# पुस्तक परिचय

किताब की असली मनसा यह है कि भारत के राजकाज की बातें अनपढ़ आदमी सुनने से समझ ले और मामूली अक्षर ज्ञान रखने वाला पढ़ कर फौरन नतीजों पर पहुंच जाय। भारत के राज की बातों को अधिक स्पष्ट करने के लिये इस [illegible] ना की [illegible] । पुस्तक में सि[illegible] विवेचन है [illegible] आधार
५. सर्ववाद, एकात्मकवाद [illegible] रचना की जाती है।

पुस्तक दूसरी [illegible] प्रयत्न कर रहे हैं, [illegible] भारत के राजकाज [illegible] काफी सहायता [illegible] हुई हैं इसलिये इस [illegible] विधि भी पहली पुस्तक में [illegible] कर दी गई है।

दूसरी पुस्तक में भारत के राज को चलाने के लिए जो नई नियमावली बनी है, उसे जनता की बोली में तथा जनता के ढंग से समझाया गया है। इस चीज को पढ़ते समय उस कानून को सामने रखना चाहिए जिसकी बड़ी बड़ी बातें यहां समझाई गई हैं।

तीसरी पुस्तक में दूसरे भाग के राज्यों पर विशेष रूप से लिखा गया है। अजीब किस्म के इन रजवाड़ों का आजकल राज-काज किस प्रकार चल रहा है, तथा भविष्य में क्या हालत रहेगी, सूबों में और इन नये किस्म के राज्यों में क्या फर्क है, राजा

# विषय-सूची

# – राजकाज की बातें –

## पुस्तक पहली

राज-काज की जिन बातों का वर्णन यहां किया जायगा उन्हें विधान या संविधान कहते हैं। अंग्रेजी में इन्हीं बातों का नाम Constitution है। राज-काज की दूसरी बातें भी होती हैं जिन्हें राजनीति कहते हैं। राजनीति एक बड़ी चीज़ है, विधान इसका एक छोटा अंग है। तो फिर विधान क्या हुआ?

विधान एक नियमावली होती है जिसके अनुसार किसी देश का राज-काज चलता है। मंत्रि मंडल कैसे बनेगा, पार्लमेंट कैसे चुनी जायगी, प्रेज़ीडेंट कैसे चुना जायगा। इन तीनों संस्थाओं के अधिकार क्या होंगे। आपसी सम्बन्ध क्या होंगे। इनकी अवधि क्या होगी। वोट देने का हक कैसे आदमियों को होगा। प्रान्तों का केन्द्र से क्या सम्बन्ध होगा। ये सब बातें जिस नियमावली में होती हैं, बस उसी को विधान कहते हैं। यह इसका शास्त्रीय अर्थ है। यों विधान शब्द का प्रयोग बहुत तरह से होता है। साधारण बोल चाल में किसी भी संस्था के नियमों को विधान कह देते हैं। आपकी लायब्रेरी का विधान क्या है। गऊशाला का विधान बनाया जायगा। कांग्रेस के विधान में परिवर्तन किया जायगा आदि आदि। इस पुस्तक में विधान का अर्थ शास्त्रीय है और इसमें सिर्फ राज्य विधान की बातें हैं। इस अर्थ में विधान, राज्य व्यवस्था को कहते हैं।

संविधान जनतंत्रात्मक व्यवस्था का बोध कराता है। राज-काज चलाने के लिये कोई न कोई नियमावली तो एकतंत्रात्मक राज्य में भी होती ही है पर उसे विधान नहीं कहते हैं, और न ही उस राज्य के शाषक को वैधानिक शाषक कहते हैं। तो फिर इस विशिष्ट अर्थ में विधान वह नियमावली है जिसके अनुसार जनतंत्रात्मक राज्य का संचालन होता है।

जनतंत्रात्मक राज्य का स्वरूप, ढांचा, निर्माण लगभग सभी जगह एकसा ही होता है। फर्क सिर्फ बारीकियों में होता है। इसलिये यह बहुत जरूरी है कि किसी भी देश के विधान को समझने के लिये, जनतंत्र के सैद्धांतिक ढांचे को समझा जाय।

जनतंत्र का ढांचा एक तिमंजले मकान का सा होता है जिस की छत पर महादेवजी बैठे हों।

इस भवन की पहली मंजिल पर जनता, दूसरी पर पार्लमेंट और तीसरी पर मंत्रिमंडल होता है। इस भवन की छत पर एक चबूतरा होता है जिस पर महादेवजी बैठे रहते है।

पहली मंजिल पर जनता होती है। इस जनता का वास्तव में, राज-काज में क्या हाथ होता है, यह समझने की बात है। सबसे पहले तो यह समझ लेना चाहिये कि जनता खुद राज नहीं करती है और न कर ही सकती है, यद्यपि यह जनता का राज कहलाता है। जनता इतनी लम्बी चौड़ी है कि यह एक जगह बैठ कर सिवाय रौला मचाने के और कुछ नहीं कर सकती। हां, इतिहास में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहां सारी जनता ने राज

किया है। ग्रीस, जिसे यूनान भी कहते हैं, ऐसे प्रयोगों के लिये इतिहास में मशहूर है। ग्रीस में छोटे छोटे राज्य थे जिन्हें नगर राज्य कहते हैं। एक नगर के सारे लोग एक जगह बैठ कर कानून बनाते और निर्णयों पर पहुँचते थे। पर ऐसे राज्य आज कल नहीं पाये जाते जो केवल नगरों में ही सीमित हों।

इस कठिनाई को लांघने के लिये राजनीति-शास्त्र में एक प्रणाली मालूम की गई जिसे प्रतिनिधि प्रणाली कहते हैं। जनता अपने प्रतिनिधि चुन लेती है और ये प्रतिनिधि, मोटे रूप में कहना चाहिये, राज करते हैं। इसलिये जनतंत्र सरकार को प्रतिनिधि सरकार भी कहते हैं। और जन राज्य का अर्थ, वास्त-विक रूप से, प्रतिनिधि राज्य ही होता है।

कितनी जनता पर एक प्रतिनिधि होना चाहिये, यह एक महत्व का प्रश्न है। वाद विवाद में न पड़ कर मोटे रूप से कहना काफी होगा कि एक प्रतिनिधि थोड़े से थोड़े आदमियों पर होना चाहिये। अगर प्रतिनिधि भेजने वाली जनता ज्यादा से ज्यादा होती जायेगी तो जनतंत्र में फर्क आता जायेगा। मिसाल के लिये, हिटलर अपने आप को सबसे बड़ा जनतंत्री कहता था। उसका दावा था कि मेरे पीछे शत प्रति शत जनता है। मैं ही जनता का असली प्रतिनिधि हूँ। दूसरे प्रतिनिधियों का दावा सिर्फ आंशिक रूप से ही सच है। वह कहता था इङ्गलैंड की सरकार केवल ५१ फी सदी का प्रतिनिधित्व करती है। मैं सौ फी सदी का प्रतिनिधित्व करता हूँ। उसकी दलील में गलती यह थी कि नौ करोड़ जर्मनों

पर एक प्रतिनिधि होना जनतंत्र की आत्मा को मारना है। इतने करोड़ों पर एक प्रतिनिधि नहीं होना चाहिये। प्रतिनिधित्व, जैसा कि ऊपर कहा गया है, थोड़े से थोड़े आदमियों पर होना चाहिये।

हिन्दुस्तान में केन्द्रीय पार्लेमेंन्ट के सदस्यों के लिये जो प्रतिनिधित्वरखा है वह पांच लाख और साढे सात लाख के बीच का है। कम से कम ५ लाख पर एक प्रतिनिधि होगा। और एक प्रतिनिधि साढे सात लाख से ऊपर के आदमियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।

इसका मतलब यह है कि छोटे से छोटा जो निर्वाचन क्षेत्र बन सकता है वह पांच लाख और साढ़े सात लाख के बीच का होगा। यह निर्वाचन क्षेत्र बहुत बड़ा होता है। बड़ा निर्वाचन क्षेत्र रखने में बहुत दोष आ जाते हैं। इतने मत दाताओं के संगठन में, इनसे सम्पर्क रखने में, इनको निर्वाचन स्थान पर लाने में, इनके दृष्टिकोण को समझने में, हर प्रकार के समाचार से इनको सूचित रखने में बड़ी कठिनाइयाँ पड़ती हैं। ये सब काम तो साधन सम्पन्न आदमी ही कर सकता है। निर्धन आदमियों के लिये चुना जाना बड़ा भारी मुश्किल हो जाता है। पैसे वाला आदमी ही जिसके पास अनेक साधन होंगे, ऐसे बड़े निर्वाचन क्षेत्रों में विजय पा सकता है। अगर १५ करोड़ आदमियों का प्रतिनिधित्व रख दिया जाय तो एक निर्वाचन क्षेत्र से जवाहर लाल और दूसरे से पटेल, दो ही आदमी आ सकते हैं। दूसरे दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व नहीं हो सकता, इसे जनतंत्र नहीं कहेंगे।

निर्वाचन क्षेत्र छोटे से छोटा बने, तभी जनतन्त्र की आत्मा सुरक्षित रह सकती है। चुनाव के लिये जिन क्षेत्रों में देश बांटा जाता है उन्हें निर्वाचन क्षेत्र कहते हैं। ठीक उसी तरह जैसे शासन करने के लिये देश तहसीलों में बांटा जाता है।

जनता प्रतिनिधि चुनती है इसका मतलब यह नहीं समझना चाहिये कि हर एक आदमी चुनाव में हिस्सा लेता है। जनता के जो सदस्य नाबालिग, बच्चे हैं, वे वोट नहीं देते और देना भी नहीं चाहिये। बच्चों का मूल्यांकन बड़ों से भिन्न होता है। बेर की मुट्ठी देकर बच्चों से वोट प्राप्त किया जा सकता है। इसके सिवाय वे लोग भिन्न भिन्न दलों व व्यक्तियों की विचार-धारा व प्रोग्राम में भेद मालूम नहीं कर सकते। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग बालिग हैं, पूरी उमर के हो गये हैं-उन्हें मताधिकार होना चाहिये और वास्तव में आदर्श मताधिकार है भी यही। परंतु विधानों की हिस्ट्री में ऐसा नहीं पाया जाता। जनतन्त्र के प्रारम्भिक दिनों में पार्लमेंट के चुनावों में ऊंचे घरानों के लोगों को ही हक मिलता रहा है। जनतन्त्र के जन्म स्थान इंगलैंड से उदाहरण देकर इस बात को स्पष्ट किया जाता है। वहां पर पार्लमेंट नाम की संस्था का आरम्भ चौदहवीं सदी में हो गया था, परन्तु उसके सदस्य और सदस्यों के निर्वाचक केवल अमीर उमराव ही होते थे। आगे चलकर इंगलैंड में जब मशीनों का जमाना आया और कारोबार तथा व्यापार बढ़ा तो धनपतियों की नई श्रेणी खड़ी हो गई। इस श्रेणी ने मताधिकार के लिये जोर लगाया और

सन् १८३२ में यह हक हासिल कर लिया। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के बीच तक केवल भूमि-पति तथा धन-पति ही मताधिकार के मालिक थे।

इसी व्यवसायिक क्रांति ने एक नये वर्ग को जन्म दिया था। इस मजदूर वर्ग ने १८३२ के बाद वोटों के लिये आंदोलन किया। उधर देहातों में भूमिपतियों के किसानों ने भी कोशिशें शुरू की। इसके फलस्वरूप सन् १८६७ में छोटे पूंजीपति, कुछ कारीगर और अच्छे खाते पीते किसानों को भी वोट के हक मिल गये। सन् १८८४ में मताधिकार कुछ और विस्तृत और उदार किया गया और उन सब लोगों को वोट के अधिकार मिले जिनके पास अपने निजी घर थे या अच्छा किराया देते थे।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रजातन्त्र के जन्म के लगभग ५०० वर्ष बाद मताधिकार कुछ विस्तृत हुआ पर वह भी बालिग मताधिकार नहीं था। सारी औरतें इस हक से वंचित थीं और वे लोग भी वंचित थे जिनके पास कुछ सम्पत्ति नहीं थी। मताधिकार सम्पत्ति पर निर्भर करता था और लिंग भेद पर भी निभर था। एक औरत चाहे कितनी ही पढ़ी लिखी व धनवान क्यों न हो, वोट तो वह भी नहीं दे सकती थी।

बीसवीं सदी के शुरू में १६१४-१६१८ में संसार का पहला महायुद्ध हुआ। युद्ध नये युगों को लाने वाले होते हैं। इस युद्ध में औरतोंने अच्छा सहयोग दिया और युद्ध की समाप्ती पर १६१८ में उन्हें भी मताधिकार मिल गया। परन्तु इसमें भी एक कसर

रखदी। औरत तीस साल की होने के बाद ही वोट दे सकती थी। जब औरतों को वोट देने का अधिकार मिल गया तो उधर पुरुषों में बालिग मताधिकार कर दिया गया। इंगलैंड में २१ साल की उम्र बालिग होने की उम्र मानी जाती है। यह ध्यान देने की बात है कि १६१८ में भी जहां पुरुषों में हर एक बालिग को २१ साल का होने पर मताधिकार मिल जाता था, वहां औरतों को मत देने योग्य होने के लिये तीस साल का होना पड़ता था।

अन्त में सन् १६२७ में औरतों को भी बालिग मताधिकार मिल गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बालिग मताधिकार इगलैंड में ६०० वर्ष के संघर्ष से प्राप्त किया गया।

प्रसन्नता की बात है कि भारत के विधान में बालिग मताधिकार जनतन्त्र के आरम्भ में ही रख दिया गया परन्तु इस मताधिकार में एक कसर है। भारतीय कानून में बालिग होने की उम्र १८ वर्ष रखी हुई है। परन्तु मत देने के सम्बन्ध में बालिग होने की उम्र २१ साल की रखी गई है। तथा उम्मेदवार की उम्र कम से कम २५ वर्ष की रक्खी गई है। इतनी ऊँची उम्र रखने से विद्यार्थी लोग एक दम से एक कीमती हक से पिछड़ गये हैं। १८ से २१ साल के भीतर की उम्र ही राजनीति में ज्ञान लाने वाली उम्र होती है।

जनता का रोज़ काज से क्या सम्बन्ध होता है इस विषय को खतम करने से पहले एक बात लिखनी जरूरी है कि जनता

साधारणतया उदासीन ही रहती है। वह दिलचस्पी कम लेती है। यह निरसता यहां तक देखी गई है कि लाख कोशिश करने पर भी लोग वोट देने केवल ५० फीसदी निर्वाचक जाते हैं। इसका कारण यह है कि पार्लमेंट पर, मन्त्री मण्डल पर अगले चुनावों तक कोई काबू नहीं होता। जनता अपने को बेबस समझती है। साधन सम्पन्न लीडर झूठे सच्चे वायदे करके और अनेकानेक दबाव डलवाकर वोट छीन लेते हैं और सीढ़ी को फिर ठुकरा देते हैं।

जनतंत्र में अन्तिम अधिकार तो जनता के ही होते हैं। तीन साल, चार साल अथवा पांच साल के बाद जब अगले चुनाव होते हैं उस समय वे अपने इन अधिकारों को बरत सकते हैं। पार्लमेंट के सदस्य कौन होंगे इसका फैसला तो चुनाव के वक्त जनता ही करती है। लेकिन भिन्न भिन्न प्रलोभनों के दबावों से और निरसता से छुटकारा पाना जनता के लिये आसान नहीं। फिर अगले चुनावों तक पार्लमेंट जो कुछ करती है उस पर जनता का कोई अधिकार नहीं। सन् १९३८ में मीस्टर चेम्बरलेन म्युनिक में जाकर हिटलर को जो कुछ देकर आए उसके लिये जनता राजी नहीं थी और जगह जगह सभायें करके जनता ने विरोध किया. परन्तु पार्लमेंट में ५१ फी सदी वोट उसके थे, इसलिये वह सफल हुए।

लेकिन जब तक विधान शास्त्र में कोई नया तरीका नहीं निकलता है, हमें प्रतिनिधि सरकारों से ही काम चलाना पड़ेगा।

पार्लेमेंट - जनतन्त्र की इमारत की दूसरी मंजिल पार्लेमेंट के नाम से मशहूर है। यह दूसरी मंजिल ही जनतन्त्र का मर्म स्थान है। यही उसकी आत्मा, यही उसका हृदय है। यह जनतंत्रीय ढांचे की, उस मशीनरी का केन्द्र है। मकान की निचली मंजिल पर पनवाड़ियों की दुकानें होती हैं जिन पर पान खा खा कर लोग जगह जगह थूकते रहते हैं हलवाइयों की दुकानें होती है, जिन पर मक्खियां भिन भिनाती हैं और कुत्ते खड़े कढ़ाई चाटा करते हैं। मकान की दूसरी मंजिल ही स्वच्छ और शांतिमय होती है। भद्रलोग इसी मंजिल पर रहते हैं। पार्लेमेंट अंग्रेजी शब्द है जो इस समय सर्वप्रिय तथा प्रचलित हो गया है। इस संस्था का शास्त्रीय नाम प्रतिनिधि सभा है। जनता के प्रतिनिधियों की यह सभा होती है इसलिये इसका यह नाम ही जचता है। इस संस्था का मुख्य काम देश के लिये नियम, कायदे-कानून बनाना, आदि है इसलिये इसे धारा सभा भी कहते हैं। धारा नाम कानून का है। हिन्दुस्तान में ये संस्थायें असेम्बली के नाम से भी प्रसिद्ध रही हैं। लेकिन यह ध्यान देने लायक बात है कि असेम्बली शास्त्रीय नहीं है। यह साधारण पार्लेमेंट के सिर्फ एक भाग का बोध कराती है।

**पार्लेमेंट के काम**—पार्लेमेंट का सबसे पहला और सबसे जरूरी काम कानून बनाना है। देश में हर साल सैकड़ों कानून बनते हैं, कितने ही कानूनों में तबदीलियां होती हैं और रद्द भी कितने ही कानून होते हैं। समाज ज्यों विकसित होता जाता है

रयों जटिल होता जाता है और कानूनों की भरमार होती जाती है। बैंकों, कम्पनियों, कारोबारों, कारखानों, व्यापार आदि के उचित संचालन के लिये कितने ही नियम बनते रहते हैं। समाज के भिन्न भिन्न वर्गों के आपसी सम्बन्धों को ठीक करने के लिये, भिन्न भिन्न सम्प्रदायों और जातियों के निजी जीवन को नियंत्रित करने के लिये कितने ही कानून बनते और सुधरते हैं। जनतंत्रीय प्रणाली में पार्लमेंट ही कानून बना सकती है, दूसरी कोई संस्था कानून नहीं बना सकती।

पार्लमेंट का दूसरा प्रधान कार्य अर्थ सम्बन्धी होता है। बजट को पार्लमेंट ही पास कर सकती है। सरकारी खजाने की एक एक पाई कैसे खर्च की जायगी, नये टेक्स कौनसे लगाये जायेंगे, पुराने टेक्स कौनसे हटाये जायेंगे, यह सब काम पार्लमेंट ही कर सकती है। यहां तक कि सरकारी मन्त्रियों और दूसरे इसी श्रेणी के कर्मचारियों को क्या वेतन दिया जावेगा, यह सब पार्लमेंट ही निश्चय करती है। कौनसे महकमें पर कितना खर्च किया जावेगा, यह सब फैसला पार्लमेंट ही करती है। मोटी दृष्टि से बजट सम्बन्धी बातें पास करना एक प्रकार से कानून बनाना ही है। यह कानून हर साल बनता है। हिन्दुस्तान में इस कानून पर मार्च के महिने में बहस होती है और १ अप्रेल से लागू हो जाता है।

तीसरा मोटा काम पार्लमेंट का नीति निर्धारित करना है। देश की विदेशी नीति क्या रहेगी, घरेलू नीति क्या होगी। किस देश व किस देश-समूह से क्या सम्बन्ध रहेंगे, अपने देश में आर्थिक,

सामाजिक तथा राजनैतिक नीति क्या रहेगी आदि चीजों को पार्लेमेंट ही पास करती है।

**मन्त्री मण्डल को बनाना और हटाना**—यह काम भी पार्लेमेंट का आधार भूत काम है। मन्त्रि मण्डल का निर्माण पार्लमेंट ही करती है और पार्लेमेंट ही मंत्रियों को हटा सकती है। हटाने और बनाने की विधि आगे लिखी जायगी।

जनतांत्रिक भवन की तीसरी मंजिल मन्त्रि मण्डल कहलाती है। यह मंडल ही राज्य का संचालन करता है। दिन प्रति दिन का काम ये मंत्री लोग ही करते हैं। ये अपने अपने महकमों के सर्वोच्च अधिकारी होते हैं। शिक्षा मंत्री, माल मंत्री, पुलिस मंत्री जिसे गृह मन्त्री भी कहते हैं, अर्थ मंत्री, विदेश मंत्री, रक्षा मन्त्री आदि कितने ही मंत्री होते हैं। इनका एक सरदार होता है जिसे प्रधान मन्त्री कहते हैं। ये सब मन्त्री पार्लेमेंट के सदस्य होते हैं।

**निर्माण विधि**—पार्लेमेंट में अनेक राजनैतिक दल होते हैं। राजनैतिक पार्टियों जनतन्त्र की कुदरती सन्तान हैं। जहां जनतंत्र होगा, वहां पार्टियों अवश्यंभावी होंगी। पार्लेमेंट में जो बहुमत दल होता है, उसका नेता प्रधान मंत्री बन जाता है। यह प्रधान मन्त्री फिर अपने मण्डल के दूसरे मन्त्रियों का निर्माण खुद करता है। इसकी कानूनी विधि वास्तव में इस प्रकार है। पिछले पन्नों में जिसे महादेवजी कहा है वह व्यक्ति पार्लेमेंट के किसी व्यक्ति को प्रधान मन्त्री नियुक्त करेगा और फिर उसे सरकार बनाने के लिये कहेगा। प्रश्न यह है कि यह महादेवजी किस व्यक्ति को प्रधान मन्त्री

बनायेंगे। इसके सामने सिद्धान्त क्या होंगे। उत्तर आसान है कि वह उस व्यक्ति को बुलायेंगे जिसके पीछे पार्लेमेंट में बहुमत होने की संभावना होगी। सही है कि वह बहुमत वाली पार्टी के लीडर को ही बुलायेंगे, यद्यपि यह विधान में लिखा हुआ नहीं होता कि वह उस पार्टी के लीडर को बुलाये। यह सब स्वतः चलता है। अगर ऐसा न हो तो मन्त्रि मण्डल अपनी किसी भी बात को पार्लेमेंट में पास नहीं करवा सकता जैसा कि आगे लिखा जावेगा। पार्लेमेंट अपने प्रस्ताव से उक्त मंत्रि मण्डल को हटा भी सकती है।

शेष मंत्रियों की नियुक्ति प्रधान मंत्री खुद करता है और होना भी ऐसा ही चाहिये। प्रधान मन्त्री यदि किसी व्यक्ति की रीति-नीति से सहमत नहीं है तो वह मन्त्रि मण्डल चलना कठिन हो जाता है। क्योंकि रीति-नीति मन्त्रि मण्डल की एक ही होती है इसलिये मण्डल के सारे मन्त्री एक ही दल के होते हैं।

कई बार ऐसा भी हो सकता है और होता भी रहा है कि पार्लेमेंट में कोई भी दल सर्व रूपेण बहुमत में नहीं होता। किसी दल के सदस्यों की संख्या ५१ फीसदी से ऊपर नहीं होती। ऐसी सूरत में मिला जुला मन्त्रि मण्डल बनता है। भिन्न भिन्न दल एक न मिल सकें और सरकार न बन सके तो पार्लमेंट भंग करदी जाती है और नये चुनाव होते हैं।

इसी मन्त्रि मण्डल को सरकार या गवर्नमेंट कहते हैं।

**मन्त्रि मण्डल को हटाने की विधि**—मंत्रि मण्डल की

रीति नीति को अगर पार्लमेंट पास न करे, उनके प्रस्तावों को हर बार फेल करती रहे और मन्त्रि मण्डल अपना काम न चला सके तो सरकार को इस्तीफा देना पड़ता है। पर हो सकता है कि मन्त्रिगण अपने स्थान पर चिपके रहें और कोई रीति नीति बनावे ही नहीं जिसे पार्लमेंट के सामने रखना पड़े, तो ऐसी सूरत में एक विधि और होती है। पार्लमेंट सरकार पर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकती है। पार्लमेंट कह सकती है कि हमें इस सरकार पर कोई विश्वास नहीं है। इसके काम हमको पसन्द नहीं हैं। तो फिर मन्त्रि मण्डल को इस्तीफा देना पड़ता है।

हम देखते हैं कि सरकार अपने कामों के लिये पार्लमेंट के प्रति जिम्मेवार होती है। इसीलिये ऐसी शासन प्रणाली को उत्तरदायी शासन कहते हैं। अपने कारनामों का इन्हें पार्लमेंट में उत्तर देना पड़ता है। ये उसके प्रति उत्तरदायी हैं।

जनतंत्र की इस इमारत पर जो महादेवजी बैठाये गये हैं वे इस भवन का अभिन्न, अखंड और अटूट अंग है। महादेवजी के बिना जनतंत्र नहीं चल सकता। महादेवजी कुछ नहीं करते और सब कुछ करते हैं। वास्तव में यों कहना चाहिये कि वह कुछ नहीं करते इसलिये सब कुछ करते है। प्रश्न यह उठता है कि जब पार्लमेंट भी बन गई, सरकार भी बन गई तो फिर बाकी क्या रह गया और उसका बाकी अंग का काम क्या होगा। महादेव जी की स्थिति वास्तव में सबसे रोचक स्थिति है। इस अंग का नाम जो महादेवजी रखा गया है, वह बड़ी सोच

समझ के बाद रखा गया है। यह अंग वास्तव में महादेव ही है। देवालय में आप जाओ, दर्शन करो, महादेवजी कभी दर्शनों से इनकार नहीं कर सकते और न ही अभी तक इनकार करते देखा गया है। अगर आप अदब और शिष्टाचार के साथ वहाँ पहुँचते हैं तो दर्शनों की इनकारी नहीं हो सकती। आप रूखा सूखा, फीका नमकीन, मीठा आदि कैसा ही चढ़ावा उसे चढ़ाओ और कितना ही चढ़ाओ, महादेवजी कभी यह नहीं कह सकते कि मुझे भूख नहीं, या कम है, फीका लगता है, कड़वा लगता है। जो आप चढ़ायेंगे, उसे मंजूर करना ही पड़ेगा, गले से उतारना ही पड़ेगा।

इस महादेव को भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न नामों से पुकारा जाता है। इंगलैंड में इसे राजा कहते हैं। भारत के विधान में इसका नाम प्रेजीडेन्ट रखा गया है।

दर्शन देने, चढ़ावे मन्जूर करने का ही अगर एक काम होता तो यह खर्चीली संस्था कभी की उठा दी होती। पर असलीयत यह है कि इन कामों के साथ साथ उसके और भी बहुत से काम हैं।

जब तक कोई काम विधान के अनुसार होता रहता है तब तक तो वास्तव में वह मूर्ति ही है। चुपचाप यह मूर्त्ति रहती है और चुप्पी हां की निशानी होती है। परन्तु ज्योंही कोई काम विधान के खिलाफ हुआ कि यह मूर्ति जीता जागता मानव हो जाता है। अवैधानिक कार्यवाई होने पर उसकी दैवी-शक्ति

और-मानव शक्ति दोनों मिलकर उस अवैधानिक कुचक्र फौरन रोक-थाम लगा देती हैं।

प्रधान मंत्री सिर्फ एक पार्टी का नुमाइन्दा, प्रतिनिधि होता है। वह दलगत राजनीति में फंसा रहता है, उसका कार्य-क्रम, रीति-नीति केवल ५१ फीसदी जनता के हित में होती है। ऐसी सूरत में ४६ फीसदी का रक्षक प्रेजीडेंट अथवा बादशाह ही होता है। इन अल्पसंख्यकों के विरुद्ध अवैधानिक कार्रवाई करने पर प्रेजीडेंट फौरन कदम उठाता है। वह उस प्रस्ताव और बिल पर दस्तखत नहीं करता जो अवैधानिक होता है।

पार्लेमेंट ने अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दिया अथवा दूसरे ढंग से मंत्रियों ने पार्लेमेंट का विश्वास खो दिया और मंत्रिगण इस्तीफा देने से इनकार करते हैं तो प्रेजीडेंट का काम है कि वह उन्हें डिसमिस करे।

संक्षेप में कह सकते हैं कि प्रेजीडेंट विधान का रक्षक होता है। वह इस जनतंत्री ढांचे का रक्षक होता है। जिस भवन की छत पर वह बैठा है उस भवन का वह प्रहरी है, पहरेदार है। इसीलिये यह रक्खा है कि कोई भी सरकारी नियम कानून उसके दस्तखत के बिना पूरा नहीं माना जाता।

पार्लेमेंट के सम्बन्ध में कुछ और बातें।

पीछे के पन्नो में जनता, पार्लेमेंट, मंत्रीमंडल और सर्वोच्चाधिकारी के विषय में चर्चा की गई। इस विषय को खतम करने से पहले पार्लेमेंट पर कुछ और लिखना आवश्यक है।

जिस संस्था को हमने पार्लेमेंट कहा है वह वास्तव में एक जटिल संस्था है। पार्लेमेंट में साधारणतया तीन-चार संस्थायें में शामिल होती हैं। दो भाग तो पार्लेमेंट के खुद के होते हैं, इसके अतिरिक्त सर्वोच्चाधिकारी जिसे हमने महादेवजी कहा है वह भी पार्लेमेंट का अंग होता है क्योंकि उसके दस्तखत के बिना कोई कानून कायदा सही नहीं होता। मंत्री लोग भी इसी पार्लेमेंट के मेम्बर होते हैं। परन्तु मंत्री लोग पार्लेमेंट से ही बनते हैं इसलिये उन पर विचार करने की जरूरत नहीं। इसलिये पालमेंट के अंग हम तीन ही मानेंगे। ये हैं ऊपर वाली सभा और नीचे वाली सभा और सर्वोधिकारी। इङ्गलैंड में ऊपर वाली सभा और नीचे वाली सभा को क्रमशः लोर्ड सभा और कामन सभा कहते हैं, अमेरिका में सिनेट और प्रतिनिधि सभा, फ्रांस में सिनेट और प्रतिनिधि सभा, रूस में जातियों की सभा सोवियट ऑफ नेशनलिटीज—और यूनीयन सभा—सोवियट ऑफ दी यूनियन, हिन्दुस्तान में राज्य सभा और जन सभा। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी बड़े बड़े देशों में पालमेंट की दो सभायें हैं। इन दोनों सभाओं का काम लगभग एक ही होता है—वही जो पीछे बताया जा चुका है। सवाल यह उठता है कि पार्लेमेंट की ये दो सभायें क्यों बनाई जाती हैं।

इस सम्बंध में हमें यह याद रखना चाहिये कि पार्लेमेंट की दोनों सभायें समान रूप से जनता की प्रतिनिधि नहीं होती। बल्कि उचित ऐसा कहना होगा कि इनमें से एक सभा तो जनता

का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी जनता का प्रतिनिधित्व न करके किसी हितविशेष का प्रतिनिधित्व करती है। इस दूसरी सभा के सदस्य व्यापार मंडल के प्रतिनिधि अथवा बड़ी जायदादों के प्रतिनिधि होते हैं। इस उद्देश्य से जब दूसरी सभायें बनाई जाती हैं तब तो उनका काम स्पष्ट हो जाता है। वह यह कि जन-सभा के पास किये हुये बिलों को यह सभा रोकती है। कहना चाहिये कि पूंजीवादी समाज एक हाथ से देकर दूसरे हाथ से वापिस लेना चाहता है। जनता के आन्दोलन पर स्थापित सरकार जनसभा को अधिकार देती है, पर उसके सिर पर एक सम्पत्ति पतियों का गुट थोप देती है। युक्ति यह दी जाती है कि पार्लियामेंट के निचले हाउस में अनपढ़ लोग बैठते हैं, वे जल्दबाजी में कोई ऐसा कानून बना बैठें जो देश के लिये हानिकारक हो। इस जल्दबाजी को रोकने के लिये एक सियाने समझदार आदमियों की सभा भी चाहिये। समझदारों की यह सभा अपने ज्ञान प्रकाश से उन बिलों की छान बीन करती है और उन बिलों को या तो ठुकरा देती है या उनमें सुधार कर देती है। इस सभा का नाम, शिष्ट शब्दों में, सुझाव देने वाली सभा, दोहराने वाली सभा, थोड़ी देर कराने वाली सभा, आदि रखा हुआ है।

लेकिन यह जरूरी नहीं कि दूसरी सभा केवल सम्पत्ति की रक्षा के लिये ही बनी हुई होती है। इसके दूसरे उद्देश्य भी हो सकते हैं। उदाहरण के लिये रूसी पार्लियामेंट के भी दो ही हाउस हैं। परन्तु वहां कोई आर्थिक वर्ग है ही नहीं। इसलिये

यह नहीं कहा जा सकता कि वहां का दूसरा हाउस किसी वर्ग विशेष की रक्षा के लिये है। वहां का दूसरा हाउस रूस में रहने वाली भिन्न भिन्न जातियों का प्रतिनिधित्व करता है। जातियों का मतलब वह नहीं है जो हमारे यहां है। जातियों का मतलब वहां प्रादेशिक या भौगोलिक जातियों से है जिन्हें नेशनलिटी कहते हैं। कह सकते हैं कि दूसरी सभा जरूरी हो सकती है, पर उसके निर्माण के उद्देश्य प्रगति की रोक थाम नहीं होना चाहिये।

भारत के विधान में पार्लियामेंट के दो हाउस रक्खे हैं। प्रगति की रोक थाम के लिये यह सभा बनाई है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसके २५० सदस्यों में से केवल १२ को प्रेजीडैन्ट नामजद करेगा। शेष २३८ प्रान्तों के प्रतिनिधि होंगे। यह सभा क्या मतलब हल करेगी, कुछ समझ में नहीं आता। यह खर्चा फिजूल का ही नागरिकों पर डाला है।

ऊपर वाली सभाओं के अधिकार नीचे वाली सभा के समान नहीं होते। जहां तक रुपये पैसे से सम्बन्ध रखने वाले बिलों का सम्बन्ध है, किसी भी देश में अपर हाउसों को कोई अधिकार नहीं होते। क्या टेक्स नया लगाना है, क्या टेक्स हटाना है, किस महकमे पर कितना रुपया खर्च करना है, इस सम्बन्ध के बिल-रुपया बिल, मनी बिल समझे जाते हैं और ऐसे बिलों के बारे में अपर हाउस को कोई अधिकार नहीं होते। दूसरी किस्म के जितने भी बिल हैं, उनमें अपर हाउस को जो अधिकार होते हैं वे भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न हैं। इंगलैंड में

लोर्ड सभा ऐसे बिलों को जो रुपया-बिल नहीं होते, एक वर्ष के लिये रोक सकती है। एक वर्ष के बाद ऐसे नोनमनी बिल बादशाह के दस्तखतों के बाद अपने आप कानून बन जाते हैं।

भारत में यदि अपर हाउस ऐसे बिल को मंजूर न करे तो दोनों सभाओं की मिलीजुली बैठक होगी और बिल बहुमत से पास होगा।

यहाँ हमने देखा कि पार्लियामेंट के जिसे प्रतिनिधि मंडल या धारा संस्था कहना चाहिये, साधारणतया दो हाउस होते हैं। दोनों का काम कानून बनाना होता है। पर दोनों के प्रतिनिधित्व के रूप में अन्तर होता है, चुनाव में अन्तर होता है और इसलिए विचारों में भी अंतर होता है। दूसरी सभा को रुपया बिलों में कोई अधिकार नहीं होता। भारत में भी पार्लियामेंट की दो सभायें हैं। अपर हाउस साधारणतया फिजूल की चीज होती है और इस सम्बन्ध में जो नागरिक का रुपया लगता है उसे फिजूल खर्च मानना चाहिये।

पार्लियामेंट का तीसरा अंग सर्वोच्चाधिकारी होता है जिसे हमने शुरू के पन्नों में महादेवजी कहा है। साधारणतया माना तो यही जाता है कि कानून बनाने का हक केवल उस संस्था को है जिसे पार्लियामेंट कहते हैं और प्रेजीडेंट या राजा भारत में सही भाषामें पार्लियामेंट का अंग नहीं होता। पर कुछ परिस्थितियाँ ऐसी आ जाती हैं जब प्रेजीडेंट को स्वयं पार्लियामेंट बनना पड़ता है। यह ध्यान देने लायक बात है कि पार्लियामेंट हरद

काम करने वाली संस्था नहीं है। जैसे, भारत की पार्लियामेण्ट के अधिवेशन साल में कम से कम दो होने चाहिये, ऐसा रखा हुआ है। और मानलो ये दो ही अधिवेशन हुये, और एक अधिवेशन एक महीने चला। इस प्रकार पार्लियामेण्ट की बैठक १२ महीनों में केवल दो महीने ही हुई। दश महीने सूने गये। इन दश महीनों में ऐसे मौके आ सकते हैं जब कोई कानून बनाना जरूरी हो जाता है। आजकल के जटिल जीवन में किसी भी समय ऐसी परिस्थिति पैदा हो सकती है। ऐसा संकट कालीन कानून बनाने का अधिकार मंत्रि मंडल को देना खतरे से खाली नहीं होता, क्योंकि, जैसा कि बताया जा चुका है मन्त्रिमंडल राजनीति रूपी दलदल में फसा हुआ होता है, प्रेजीडैंट कानून बना सकता है, इसलिये प्रेजीडैंट भी एक तरह की पार्लियामेण्ट ही हुआ। प्रेजीडैंट या राजा एक दूसरे अर्थ में भी पार्लियामेण्ट का अंग है। वह यह कि पार्लियामेण्ट द्वारा पास किये गये हरएक कानून पर प्रेजीडैंट के दस्तखत जरूरी हैं।

भारतीय पार्लियामेण्ट के इस प्रकार तीन अंग हैं। राज्य सभा, लोकसभा और प्रेजीडैंट। ब्रिटश पार्लियामेण्ट के भी तीन ही अंग हैं, लोर्ड सभा, कोमन सभा और राजा। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि प्रेजीडैंट पार्लियामेण्ट से जुदा चीज है। उसका काम जुदा है, चुनाव जुदा है अधिकार जुदा है। पार्लियामेण्ट सिर्फ कानून ही बना सकती है। प्रेजीडैंट के लिये कानून बनाना केवल नियम का अपवाद है। उसका असली काम जैसा कि उपर बताया है

राज्य की, समाज की देश की रक्षा है। वह हर चीज का प्रधान है, सर्वोच्चाधिकारी है, अधिपति है। इसी लिये उसे प्रधान राष्ट्रपति कहा है। इन पन्नो में उसे राष्ट्राधिपति कहा है।

राज कौन करता है—हमने देखा कि जनतंत्र के चार अंग होते हैं—जनता, पार्लियामेण्ट, मन्त्रिमंडल और राष्ट्राधिपति। सवाल उठता है कि जनतंत्र में राज कौन करता है। यह कहना कानूनी गल्ती कही जायेगी, कि जनता राज करती है। पहले कह दिया गया है कि जनता राज नहीं करती। फर्ज करो जनता ने मिटिंगे की और प्रस्ताव पास किये कि जागीरदारी खतम होनी चाहिये। जनता का यह प्रस्ताव क्या कानून बन जायेगा, नहीं। पब्लिक मीटिंगों के प्रस्ताव कानून की दृष्टि में कोई महत्व नहीं रखते। पब्लिक जगह जगह रोला मचाने लगे कि कारखानो का राष्ट्रीय कारण हो जाय, तो इन रौलों का कानून स्वरूप कुछ भी नहीं होगा।

तो क्या मंत्रिमंडल राज करता है? नहीं। मंत्रिमन्डल तो पार्लियामेण्ट का एजन्ट है। पार्लियामेण्टजैसा कहे वैसा ही उसे करना पड़ता है। मंत्रिमन्डल निर्माण का पार्लियामेण्ट ही करती है और पार्लियामेण्ट ही उसे हटा सकती है।

फिर क्या प्रेजीडैंट राज करता है। नहीं, उसके अधिकार बड़े भारी हैं पर वे अधिकार सब सीमित हैं। प्रत्येक अधिकार की मियाद डाल दी गई है। कहीं हफ्ता है, कहीं

महीना है, कहीं दो महीने हैं। और ये सब इसलिए कि पर्लियामेंट हर समय अधिवेशन में नहीं होती।

उत्तर अब साफ अपने आप ही होगया कि राज वास्तव में पार्लियामेंट करती है। खुद सीधे तरीक़े से नहीं। अपने एजन्ट मन्त्रिमन्डल के द्वारा। पार्लियामेंट, मन्त्रिमन्डल के किसी काम से बाधित नहीं। मन्त्रियों के सब कामों को ठुकरा सकती है।

कई बार ऐसा प्रश्न भी कुछ लोग कर देते हैं कि प्रेजीडेंट और प्रधान मन्त्रीमें बड़ा कौन है? अपने अपने क्षेत्रोंमें दोनों बड़े हैं। प्रधान मन्त्री के पीछे पार्लियामेंट होती है इसलिए वह अपने आपको किसी से छोटा नहीं समझता। प्रेजीडेंट को भी विधान ने अधिकार दिया है कि अगर कोई काम अवैधानिक हो तो वह उचित कार्रवाई कर सकता है।

राजनैतिक दृष्टि से प्रधान मन्त्रीका पलड़ाभारी रहता है और वैधानिक दृष्टि से प्रेजीडेंट का। प्रेजीडेंट पूजने की चीज है और प्रधान-मन्त्री भय खाने की चीज है।

## राजतंत्र, गणतंत्र, जनतंत्र

भारत की वैधानिक व्याख्या विधान की भूमिका में सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न जनतंत्रात्मक गणराज्य लिखी है। ये तीनों ही विधान के परिभाषित शब्दों में से है। तीनों शब्द विधान में अपना अपना महत्व पूर्ण अर्थ रखते हैं। हिन्दुस्तान सर्वोच्च सत्ता सम्पन्न इस अर्थ में है कि यह किसी दूसरे राज के अधीन नहीं है। भारत जनतंत्रात्मक इसलिये है कि राज करने वाली

तीनों चारों संस्थायें जो पीछे गिनाई है जनता द्वारा चुनी जावेंगी। पार्लियामेंट, प्रेजीडैंट और मन्त्रिमन्डल तीनों को हर पाँचवे वर्ष जनता चुना करेगी। वह सारी जनता जो २१ वर्ष अथवा इससे ऊपर की है।

यहां जिस शब्द को विशेष रूप से स्पष्ट करना है वह गणतंत्र है। हिन्दी में जनतन्त्र, लोकतन्त्र, गणतन्त्र आदि शब्द बिना किसी भेद भाव के इस्तेमाल होते रहे हैं। पिछले कुछ दिनों से कहीं जनतन्त्र और गण में कुछ भेद किया जाने लगा है। इन नामों के लिये अंगरेजी शब्द डिमोक्रेसी और रिपब्लिक हैं। डिमोक्रेसी और रिपब्लिक के अर्थों में कोई समानता नहीं है। बड़ा मूल भेद है दोनों शब्दों में। जहाँ राजा नहीं होता है, वहां रिपब्लिक होता है। राजा और रिपब्लिक साथ साथ नहीं हो सकते। ये दोनो शब्द एक दूसरे के विरोधाभास हैं। ये शब्द अन्तर्विरोधी हैं राजा-हीन हकूमत को रिपब्लिक कहते हैं।

डिमोक्रेसी उस शासन प्रणाली को कहते हैं जिसमें सरकार और पार्लिआमेंट समय समय पर चुनी जायें। भारत एक डिमोक्रेसी है क्योंकि यहाँ पार्लियामेंट है वह जनता द्वारा चुनी जायेगी। सरकार पार्लियामेंट में से बनेगी इसलिये वह भी चुनी हुई ही समझनी चाहिये। इसी तरह इगलैंड भी डिमोक्रेसी है। अमेरिका—यू० एस० ए० भी एक डिमोक्रेसी है क्योंकि वहाँ पार्लिआमेंट है, वह जनता द्वारा चुनी जाती है। वहां की हकूमत प्रेजीडैंट है वही भी जनता द्वारा चुना जाता है।

यहाँ पर विचारणीय बात यह है कि ऊपर के तीन उदाहरणों में इंगलैंड रिपब्लिक नहीं है, क्योंकि वहाँ राजा है। भारत और अमेरिका दोनों ही रिपब्लिक हैं, क्योंकि यहाँ कोई राजा नही हैं। राजा का काम हिन्दुस्तान में प्रेजीडैंट करेगा जो हर पांचवे साल चुना जावेगा। राजा की यह परिभाषा समझनी चाहिये कि वह वंश परम्परागत होता है। बाप के बाद बेटा गद्दी पर बैठे, ऐसी प्रणाली होती है। उसमें चुनाव का प्रश्न नहीं है। भारत के केन्द्र में राजा नहीं होगा। २८ प्रान्तों में से केवल नौ प्रान्तों में राजा से मिलती जुलती चीज होगी जिसे राज प्रमुख कहते हैं। यों बिना राज के राजा भी काफी होंगे। पर ये उनका खिताब मात्र समझना चाहिये। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम और आप अपने आपको खुश करने के लिये अपने लड़कों के नाम राजकुमार निकाल लेते हैं। राजप्रमुख, अलबत्ता, एक सार्थक शब्द है। पर विधान में इसकी परिभाषा जो की गई है वह पुराने अर्थ से भिन्न है। प्रेजीडैंट जिसे माने वह राज-प्रमुख होगा। इस परिभाषा से वह वंश परम्परागत वाली बात नहीं रह जाती।

इगलैंड के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि राजा वाला देश भी डिमोक्रेसी हो सकता है। राजा और डिमोक्रेसी में कोई विरोध नही है।

अब हम यह देखें रिपब्लिक और डिमोक्रेसी का क्या सम्बन्ध है। साधारणतया लोग सोचते हैं कि जो रिपब्लिक

होगा वह डिमोक्रेसी तो होगा ही। परन्तु ऐसा सोचना सही नहीं है। हिटलर का जर्मनी रिपब्लिक था पर वह डिमोक्रेसी नहीं था। जर्मनी रिपब्लिक होते हुये भी तानाशाही था, डिक्टेटर-शिप थी वहां। इस समय स्पेन का भी यही हाल है। स्पेन रिपब्लिक है पर वह डिमोक्रेसी नहीं है। वहां फैसिस्ट हकुमत है। वहां पार्लियामेण्ट, उत्तरदायीशासन जैसी कोई चीज नहीं है। इसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका में दर्जनों देश हैं। वे सब रिपब्लिक हैं। पर हैं सबकी सबकी सब डिक्टेटरशाही। वहां डिमोक्रेसी का नाम नहीं है।

यहां हमने देखा रिपब्लिक डिमोक्रेसी हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता।

पीछे हमने गणतंत्र यानी रिपब्लिक का मतलब स्पष्ट किया। यहां हम जनतंत्र यानी डिमोक्रेसी का मतलब स्पष्ट करेंगे। डिमोक्रेसी किसे कहते हैं, इस बात पर लोगों में मत भेद है। साधारणतया कह दिया जाता है कि जनता के राज को जनतंत्र कहते हैं। लेकिन जैसा कि हमने पीछे बताया है जनता अपने आप राज नहीं कर सकती। उसके प्रतिनिधि राज करते हैं। तो फिर प्रतिनिधि सरकार को जनता की सरकार कहना चाहिए। पर इसमें तो बहुत गोलमाल की सम्भावना है। हिटलर भी प्रतिनिधि था। मुसोलिनी भी था। और इस समय स्पेन का फ्रेंको भी है। तो फिर यह युक्ति तो गलत हो गई। एक मोटी पहचान दूसरी भी डिमोक्रेसी की बताई जाती है। वह यह कि

डिमोक्रेसी में सरकार विरोधी दल होता है। विरोधी दल अगर है और उसको अपने प्रचार का पूरा सुभीता है तो समझना चाहिये कि वहां डिमोक्रेसी है।

यह दूसरी पहचान मोटे विचार से पहले पहल तो ठीक ही सी लगती है। इसके उदाहरण इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस और भारत आदि हैं। कुछ हद तक प्रचार की आजादी, वोट देने की भी आजादी है। लेकिन वोट देने की और विरोध करने की इस आजादी से कोई फायदा नहीं हो रहा है। साधारण जनता की अशिक्षा, बेकारी, गरीबी, अन्धविश्वास, आर्थिक असमानता और रहन सहन का दर्जा वैसा ही है जितना इस आजादी से पहले था। इससे मालूम पड़ता है कि इस डिमोक्रेसी में कुछ गड़बड़ी है इससे बड़ा और सबूत क्या हो सकता है कि डिमोक्रेसी की यह प्रणाली असफल होगई। असफल हो गई जनता की दृष्टि से।

समझने की आसानी के लिये हम इस डिमोक्रेसी का नाम अमरीक डिमोक्रेसी रख रहे हैं। सवाल यह उठता है कि यह डिमोक्रेसी जनता को आजादी देने में क्यों असफल रही। रहन सहन के दर्जे में समानता लाने में क्यों असफल रही। जब वोट देने की आजादी है और विरोध करने की आजादी है तो जनता ने पार्लियामेन्ट में क्यों नहीं अपना बहुमत बना लिया? इसलिए नहीं बना लिया कि यह संघर्ष दो ऐसे दलों में है जो बराबर के नहीं है। एक दल साधन सम्पन्न है, दूसरा

दल साधन हीन है। एक के पास, दलबल है, अखबार है, रेडियो है, प्रचारक है, पुलिस है, फौज है, रुपया है, और दूसरी बहुत सी आकर्षण तथा प्रलोभन की चोजें हैं। दूसरे दल का यह हाल है कि उसके पास सभा करने के लिये भोंपू नहीं है। माइक्रोफोन नहीं है, इधर उधर जाने के लिये किराया नहीं है। वोट देने वालों को पोलिंग पर लाने के लिये लौरी नहीं है।

जनता में अन्धविश्वास है, अन्धकार है, अनपढ़ी है, चेतना और जाग्रति नहीं है। आंकड़े साफ बता रहे हैं कि लोग अपना वोट देने तक के लिये नहीं आते हैं। यहां तक देखा गया है कि पचास फीसदी वोटर भी वोट देने नहीं आते। जो लोग यह कहते हैं कि विरोधी दल क्यों नहीं अपना बहुमत पार्लियामेन्ट में बना लेता, उनके लिये यह उत्तर क्या काफी ठीक नहीं है, कि जनता में कोई जाग्रति ही नहीं है। इंगलैंड जैसे जागृत देश में भी सन् १६४५ के चुनाव में केवल ६० फीसदी निर्वाचक वोट डालने आये थे।

जनता में जाग्रति पैदा करना, उसमें शिक्षा प्रचार करना, उसके अंधविश्वासों को दूर करना, साधन सम्पन्न सरकार का काम है। सरकार ऐसा काम नहीं करती है।

अगला जबरदस्त कारण यह है कि विरोधी दलों से फूट डाली जा सकती। अलग अलग करो, फूट डालो और हकुमत करो का पुराना फोर्मूला अभी तक सत्य पूर्ण है। ट्रेड यूनियनों में, किसान सभाओं में और दूसरे दूसरे संगठनों में फूट डाल

दी जाती है और मुकाबले के संगठन खड़े कर दिये जाते हैं। जैसा कि हम हर एक देश में देखते हैं।

स्थापित स्वार्थों के पास हथकड़ों का घाटा नहीं। राष्ट्रवाद के नाम पर देश के नाम पर धर्म व संस्कृति के नाम पर, संकट वाद के नाम पर और दूसरे दूसरे गोपनीय विषयों के नाम पर उन्हें बहका लिया जाता है। देशी परदेशी का प्रश्न भोली जनता को नशे में डाल देता है। देशी दुश्मन परदेशी दोस्त से अच्छा होता है की भूल भूलैयां में भूखे और नंगे शराबियों को फंसा दिया जाता है।

बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के बाद किसान मजदूरों में नेता खड़ा किया जाता है, वह भी अन्त में प्रलोभनों में फंसा लिया जाता है। पीला पीला सोना, धोलो धोली चाँदी, सजे सजाये महल अट्टारी, नये नये फड़ फड़ाते नोट, काली काली रंग बिरंगी गद्देदार मोटरे, ऊँची ऊँची अफसरी नौकरियाँ, बेचारे थके मान्दे नेताओं को काफी से ज्यादा सिद्ध हो जाते हैं। ऐसे नेताओं के नाम गिनाने की जरूरत नहीं। मजदूर दलों की हिस्टरी ऐसे दगा बाजों से भरी पड़ी है।

रोटी रोजी का बड़ा भय रहता है। पढे लिखे आदमियों का बहुत बड़ा हिस्सा अपने जीवन निर्वाह के लिये सरकारी नौकरी पर निर्भर करता है। नौकरी से हटाते ही सरकार के पास बहानों की कमी नहीं होती। आजाद होते हैं साधन सम्पन्न लोग जो अपना निजी व्यापार व कारोबार करते हैं। गरीब

लोग क्या आजाद हैं जो या तो धनपतियों की नौकरी करते हैं या धनपतियों की सरकार की नौकरी करते हैं। तो स्थापित स्वार्थों का प्रचंड विरोध इसलिये नहीं होता कि इस नौकरी के छूट जाने का भय रहता है।

अमरीकन डिमोक्रेसी को इस बात का बड़ा अभिमान है कि इस प्रणाली में कितनी आजादी है। किसी दल पर, किसी वर्ग पर, किसी सम्प्रदाय पर कोई पाबन्दी नहीं है। यह दावा कुछ हद तक ठीक है। सवाल छूट की मात्रा का नहीं है। अगर छूट की मात्रा का सवाल हो तो फिर तो सरकार हटा लेनी चाहिये। सब से बड़ी छूट तो वही है। सवाल यह है कि यह छूट किसके फायदे के लिये है। अमीरों को धनपतियों को जहां धन कमाने की आजादी है, वहां गरीबों को सरकार और धनपतियों की आलोचना करने की भी आजादी है। पर आलोचना करने की इस आजादी से फल क्या निकला, सरकार और उसके साथी धनपति कहते हैं कि कुत्ते भौंकते रहते हैं और हाथी अपनी मस्ती से घंटी बजाता हुआ चलता ही रहता है।

सरकार की आलोचना मेरे क्या काम आये जब मकान मालिक के सामने दिन में पांच बार सिर झुकाना पड़ता है। सरकार की आलोचना क्या काम आये जब डाक्टर की फीस देने के लिये साहूकार से कर्जा लेना पड़ता है। छोटे बच्चों के उस परिवार के लिये यह क्या काम आती है, जिनका कमाने

दी जाती है और मुकाबले के संगठन खड़े कर दिये जाते हैं। जैसा कि हम हर एक देश में देखते हैं।

स्थापित स्वार्थों के पास हथकड़ों का घाटा नहीं। राष्ट्रवाद के नाम पर देश के नाम पर धर्म व संस्कृति के नाम पर, संकट वाद के नाम पर और दूसरे दूसरे गोपनीय विषयों के नाम पर उन्हें बहका लिया जाता है। देशी परदेशी का प्रश्न भोली जनता को नशे में डाल देता है। देशी दुश्मन परदेशी दोस्त से अच्छा होता है की भूल भूलैयां में भूखे और नंगे शराबियों को फंसा दिया जाता है।

बड़ी-बड़ी कठिनाइयों के बाद किसान मजदूरों में नेता खड़ा किया जाता है, वह भी अन्त में प्रलोभनों में फंसा लिया जाता है। पीला पीला सोना, धोली धोली चाँदी, सजे सजाये महल अट्टारी, नये नये फड़ फड़ाते नोट, काली काली रंग बिरंगी गद्देदार मोटरे, ऊँची ऊँची अफसरी नौकरियाँ, बेचारे थके मान्दे नेताओं को काफी से ज्यादा सिद्ध हो जाते हैं। ऐसे नेताओं के नाम गिनाने की जरूरत नहीं। मजदूर दलों की हिस्टरी ऐसे दगा बाजों से भरी पड़ी है।

रोटी रोजी का बड़ा भय रहता है। पढे लिखे आदमियों का बहुत बड़ा हिस्सा अपने जीवन निर्वाह के लिये सरकारी नोकरी पर निर्भर करता है। नोकरी से हटाते ही सरकार के पास बहानों की कमी नहीं होती। आजाद होते हैं साधन सम्पन्न लोग जो अपना निजी व्यापार व कारोबार करते हैं। गरीब

लोग क्या आजाद हैं जो या तो धनपतियों की नौकरी करते हैं या धनपतियों की सरकार की नौकरी करते हैं । तो स्थापित स्वार्थों का प्रचंड विरोध इसलिये नहीं होता कि इस नौकरी के छूट जाने का भय रहता है ।

अमरीकन डिमोक्रेसी को इस बात का बड़ा अभिमान है कि इस प्रणाली में कितनी आजादी है। किसी दल पर, किसी वर्ग पर, किसी सम्प्रदाय पर कोई पाबन्दी नहीं है। यह दावा कुछ हद तक ठीक है। सवाल छूट की मात्रा का नहीं है। अगर छूट की मात्रा का सवाल हो तो फिर तो सरकार हटा लेनी चाहिये। सब से बड़ी छूट तो वही है। सवाल यह है कि यह छूट किसके फायदे के लिये है। अमीरों को धन-पतियों को जहां धन कमाने की आजादी है, वहां गरीबों को सरकार और धनपतियों की आलोचना करने की भी आजादी है। पर आलोचना करने की इस आजादी से फल क्या निकला, सरकार और उसके साथी धनपति कहते हैं कि कुत्ते भौंकते रहते हैं और हाथी अपनी मस्ती से घंटी बजाता हुआ चलता ही रहता है।

सरकार की आलोचना मेरे क्या काम आये जब मकान मालिक के सामने दिन में पांच बार सिर झुकाना पड़ता है। सरकार की आलोचना क्या काम आये जब डाक्टर की फीस देने के लिये साहूकार से कर्जा लेना पड़ता है। छोटे बच्चों के उस परिवार के लिये यह क्या काम आती है, जिनका कमाने

वाला मर गया है। भूखे लोग नौकरी के लिये गुलामी करने और चापलूसी करने के तरीके ढूँढेंगे या सरकार की अलोचना करेंगे।

अमरीकन डिमोक्रेसी जो छूट देती है उससे धनपति फायदा उठाते है।

ऊपर के विवेचन में यह मान लिया गया है कि अपने दावे के मुताबिक अमरीकन डिमोक्रेसी प्रचार की पूरी आजादी देती है। पर वस्तु स्थिति यह नहीं है। एक सीमा के भीतर ही यह आजादी है। जहां धनपतियों की नींद में जरा बाधा पड़ी, फौरन रोक थाम लगा दी जाती है। जैसा कि आज दिन हम जगह जगह देख रहे हैं।

डिमोक्रेसी के दावेदार आज कल दो दल हैं। रूसी दल कहता है कि अमरीकी डिमोक्रेसी दिखावे की डिमोक्रेसी है। रूसी कहते हैं कि असली डिमोक्रेसी वह है जो हमारे यहां हैं। यह लम्बी चौड़ी बहस है। पर इतना तो कहना ही पड़ेगा कि अमरीकी डिमोक्रेसी केवल राजनैतिक डिमोक्रेसी है। जब तक उसमें आर्थिक डिमोक्रेसी का समावेश नहीं होगा, तब तक वह लाभ की जगह हानि ही करेगी। वोट देने की आजादी केवल राजनैतिक डिमोक्रेसी है। वर्ग भेद मिटा कर सब लोगों को आप एकसे साधन नहीं देंगे तब तक अकेला वोट बिना धार की काठ की तलवार है।

रूसी डिमोक्रेसी में धन के लिये दौड़ धूप करने की आजादी नही है, और है भी ठीक। इस दौड़ धूप का नतीजा हमेशा यह होता है कि ज्यादा चालाक और मक्कार जल्दी ही सफल हो जाते हैं और सारे धन निजी तहखानों में भर लेते हैं। उसके वाद धन को धन कमाने लग जाता है और व्यक्ति महल-शालियों में गाना वजाना सुनते हैं।

जब लोग कहते हैं कि समाजवादी देशों में आजादी नहीं होती तो उनका मतलव यह है कि वहां व्यक्तिगत धन कमाने की आजादी नहीं होती। दूसरे शब्दों में धन को धन द्वारा कमाने की जो शोषण प्रणाली है वह हटादी जाती है।

ऊपर डिमोक्रेसी का अर्थ समझाया गया है और वताया गया है कि सच्ची डिमोक्रेसी वह प्रणाली है जिसमें जनता का हाथ देश की दौलत और देश के शासन दोनों में हो। दूसरे शब्दों में आर्थिक डेमोक्रेसी और राजनैतिक डिमोक्रेसी दोनों होनी चाहिए। यह इसलिये कि एक आदमी पैदा होता ऐसे घर में जिसमें सैकड़ों मकानों और दुकानों का किराया आता है, सैकड़ों खेतों की वटाई आती है, दर्जनों कारखानों का मुनाफा आता है, दूसरा पैदा होता है ऐसे घरमें जिस पर साहूकार का कर्जा है, घर का मकान नहीं है, कमाई का कोई साधन नहीं है। दोनों व्यक्तियों की कोई वरावरी नहीं है। यह समान अवसर नहीं कहलाता। वटो

का अधिकार दोनों को है पर दोनों के प्राइम मिनिस्टरी के चांस भिन्न भिन्न है।

भारत का विधान इस सम्बन्ध में कैसा है, इस पर आगे लिखा जायगा।

ऊपर इस बात को स्पष्ट किया गया है जनतांत्रिक गणराज्य का क्या मतलब है। जनतांत्रिक क्या होता है और गणराज्य क्या होता है।

**संघवाद**—भारत का विधान संघवाद के सिद्धान्तों पर बना है। अमरीका, कैनाडा, आस्ट्रेलिया, स्वीजरलैंड आदि देशों का विधान भी संघवाद के सिद्धान्तों पर बना है। इगलैंड का विधान संघवाद पर नहीं है। वह इसके उल्टे एकात्मकवाद पर है।

प्रान्त तो किसी न किसी रूप में हर एक देश में होते हैं। इन प्रान्तों का नाम भिन्न २ देशों में भिन्न २ होता है। हिन्दुस्तान में और अमरीका यानी यू० एस० ए० में इन प्रान्तों को स्टेट कहते हैं। हिन्दुस्तान में पहले प्रान्त ही कहते थे पर अब स्टेटों के मिल जाने से सब का नाम स्टेट ही कर दिया गया है स्वीजरलैंड में कैंटन कहते हैं और कैनाडा में प्रान्त। इंगलैंड में और फ्रांस में प्रान्तीय सरकार नहीं हैं और न ही प्रान्तीय पार्लियामेंट हैं। अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा भारत में प्रान्तीय सरकारें भी हैं और प्रान्तीय पार्लियामेंट भी हैं जिन्हें एसेम्बली आदि कहते हैं।

इन प्रान्तीय सरकारों के अधिकार दो किस्म के होते हैं। केन्द्रीय सरकार अपने शासन सुभीते के लिये इन सरकारों को

कुछ अधिकार अपनी तरफ से सौंप सकती है और फिर अपनी देख रेख में उन अधिकारों का शासन कराती है। ऐसी सूरत में केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकार के कामों में दिन प्रति दिन हस्तक्षेप कर सकती है और करती भी रहती है। प्रान्तीय हकूमत की रोजमर्रा की जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार पर होती है। प्रान्तीय सरकार का अस्तित्व केन्द्रीय सरकार पर निर्भर करता है।

इस प्रकार की राज्य प्रणाली को, जिसमें प्रान्त बनाये ही नहीं जाते हैं, या बनाये तो जाते हैं परन्तु उनमें सरकारें नहीं होती, या सरकारें तो होती हैं परन्तु वे सरकारें केन्द्र के अधीन इस प्रकार होती हैं कि केन्द्र ही उनको अपनी तरफ से अधिकार सौंपे और दैनिक कार्यों में हस्तक्षेप कर सके, इसलिए इसको एकात्म प्रणाली कहते हैं।

इसकी उल्टी प्रणाली को देखें तो हमें मालूम होगा कि उस प्रणाली में प्रान्तीय सरकारें अपने क्षेत्रों में अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती हैं। उन प्रान्तीय सरकारों के कार्यों में साधारण अवस्था में केन्द्र हस्तक्षेप नहीं कर सकता प्रान्तीय सरकारों के ये अधिकार विधानों के दिये हुए होते हैं। केन्द्रीय सरकार के दिये हुए नहीं होते। इस प्रणाली में केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार के अधिकार अलग अलग बटे हुए होते हैं। यह बटवारा उस देश के विधान द्वारा किया हुआ होता है। इस विधान को केन्द्र की या प्रान्त की सरकारें या पार्लियामेण्ट अपनी मरजी के मुताबिक नहीं बदल सकतीं। उस विधान के बदलने का तरीका दूसरा होता

है जिस में प्रान्तीय सरकारें और केन्द्रीय सरकारें दोनों राजी हों।

राजकाज की ऐसी प्रणाली को संघात्मक कहते हैं। यही संघवाद है। भारत का विधान संघवाद पर बना है।

**अमरीकी नमूना और ब्रिटिश नमूना**—यह बात ध्यान देने लायक है कि पीछे के पृष्ठों में जनतन्त्र के जिस स्वरूप का का विवेचन किया गया है वह ब्रिटिश नमूना है। संसार के अधिकाँश देशों का विधान ब्रिटिश नमूने पर बना हुआ है। कैनेडा, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका, फ्राँस, भारत आदि देशों का विधान इसी आधार पर है।

अमरीकी नमूना जरा भिन्नता रखता है। इस भिन्नता को पहचानने के लिए हमें एक महत्वपूर्ण राजनैतिक मत पर विचार करना पड़ेगा।

राज्यविधान के, जैसी कि अबतक स्थिति है, तीन क्षेत्र माने गये हैं। न्याय, शासन और धारा निर्माण। इनके अंग्रेजी नाम क्रमशः ये हैं। जुडिशियरी, एक्जेक्यूटिव, और लेजिस्लेचर। भिन्न भिन्न प्रकार के मुकदमों का फैसला करने वाले महकमे को न्याय-विभाग अथवा जूडिशियरी कहते हैं। इसके अधिकारी जज, मुन्सिफ, चीफ जस्टिस आदि कहलाते हैं। दिवानी के फौजदारी के सभी मुकदमे इस महकमे में आते हैं। छोटी अदालतों से बड़ी अदालतों में अपीलें होती हैं। इस महकमें की विशेषता यह है कि यह महकमा कभी अपराधियों को पकड़ता नहीं। और न ही पार्लियामेण्ट का कोई सदस्य अपराधियों को पकड़

सकता है। चोर डाकू और दूसरे किस्म के अपराधियों को पकड़ने का अधिकार सिर्फ इन्तजामिया महकमे को होता है। इस महकमे को यहां थोड़ी देर पुलिस ही मान लो। पुलिस अपराधी को पकड़ती है कि उसने ये ये अपराध किये हैं। अब वास्तव में, उसने किये हैं या नहीं किये हैं। यह फैसला पुलिस नहीं कर सकती। इस फैसले का अधिकार केवल न्याय-विभाग को है। पुलिस उस अपराधी को न्याय विभाग को सौंप देगी। फिर जज लोग इस बात की छानबीन करेंगे कि उस व्यक्ति ने वह अपराध किया है या नहीं किया है। दोनों तरफ से वकील होंगे, दोनों तरफ से गवाहियाँ लगेंगी, कानून देखे जायगे, मौके देखे जायेंगे। अगर अपराधी निर्दोष पाया गया तो उसे छोड़ दिया जायगा। इस प्रकार सब प्रकार के अपराधी बहुत संख्या में छूटते हैं।

यहाँ विचारणीय बात यह है कि अगर फैसला करने का अधिकार भी पुलिस को ही होता तो क्या कोई कैदी अपराधी छुट सकता था? उत्तर यही होगा कि नहीं छुट सकता था। जहाँ आज कल कितने ही राजनैतिक कैदी अदालत द्वारा छोड़ दिये जाते हैं। पुलिस द्वाराफैसले की सूरत में एक भी राजनैतिक कैदी नहीं छोड़ा जा सकता था। दूसरे साधारण अपराधियों के बारे में भी यह कथन सच है। पुलिस तो किसी कैदी को उसी सूरत में पकड़ती है जब पुलिस को जच जाती है कि उस व्यक्ति ने अपराध किया है। इस प्रकार पकड़नेवाली संस्था के विचार अपराधी के विरुद्ध पहले से ही बने हुए होते हैं। इसलिये पुलिस तो

अपनी पूर्व निश्चित धारणा से निकल नहीं सकती। पुलिस को वह इतनी जची हुई होगी कि वह आगे छान बीन जरूरत ही नहीं समझेगी और अपराधी को अपने तोड़े मरोड़े कानूनों से सजा करेगी।

इन्हीं बातों पर विचार करके राजनीति शास्त्र के विद्वानों ने यह न्याय का महकमा निकाला है। यह महकमा इन्तजामियाँ महकमें से अलग होने के कारण प्रत्येक अपराधी के मामले पर निस्पक्ष और निर्दल भावना से शान्ति के वातावरण में विचार करता है। यही महकमा है जिससे न्याय की आशा की जा सकती है। इसको राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होता है तथा रोजमर्रा के शासन से भी कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जब तक इस महकमें में कोई मुकदमा पार्टियों द्वारा नहीं लाया जाता है। इस महकमें को दुनियां से कोई सरोकार नहीं चाहे कितने ही अपराध होते रहें। अदालत से बाहर की दुनियाँ जैसे इनके लिये है ही नहीं। अदालतों का महकमा कुछ अंश में सभी देशों में सरकार से यानी इन्तजामिया महकमों से आजाद होता है।

उन्हीं देशों में है जो अमरीकी

देशों का विधान है उनकी

हैं। कुछ अंश में ही

ेट कहते हैं उसे

दोनों ही होते

सरकार के

मात्र से ये अदालतें पूरी आजाद नहीं हैं।

हिन्दुस्तान में मद्रास प्रान्त के कुछ जिलों में यह प्रयोग किया जा रहा है। वहाँ उन जिलों के इन्तजामियाँ महकमों को अदालतों से अलग करके यह बात देखी जा रही है कि यह प्रणाली कहाँ तक सफल हो सकती है।

राज-काज का दूसरा महकमा शासन कहलाता है। प्रेजीडैंट, बादशाह, मंत्रिमंडल आदि ऊँचे से ऊँचे स्तर से लेकर पुलिस के सिपाही, माल के पटवारी आदि तक जो भी कर्मचारी होते हैं वे इसी महकमे के कार्यकर्त्ता हैं।

इन सब कर्मचारियों का काम राज्य का इन्तजाम करना है तथा राज व्यवस्था को कायम रखना है, शान्ति को कायम रखना है। पुलिस का महकमा अपराधियों को पकड़ता है और पुलिस मिनिस्टर के नीचे होता है। पुलिस मिनिस्टर को होम मिनिस्टर भी कहते हैं। माल का महकमा माल के मंत्री के नीचे होता है इसी प्रकार शिक्षा मंत्री, रेलवे मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री, खजाना मंत्री जिसे अर्थ मन्त्री भी कहते हैं होते हैं। इन सब मंत्रियों की सभा को मंत्रिमंडल कहते हैं। यह मंत्रिमंडल प्रधान मंत्री की देख रेख में होता है राज्य की रीति नीति का निर्माण मंत्री लोग ही करते हैं और इसी रीति नीति के आधीन अपने हुक्म स्थाई कर्मचारियों को भेजते हैं। स्थाई कर्मचारियों का काम इसी रीति नीति को चलाना है।

मन्त्रिमंडल को छोड़ कर शेष सारे कर्मचारियों का यह

परम धर्म माना जाता है कि वे खुले रूप से या हमदर्दी से राजनीति से अलग रहें। ये सब कर्मचारी अराजनैतिक होने चाहिये इस विषय पर आगे किसी अध्याय में पूरे रूप से प्रकाश डाला जायेगा।

राज्य का तीसरा बड़ा अंग पार्लियामेण्ट होती है। पार्लियामेण्ट का सम्बन्ध न तो देश के इन्तजाम से होता है और न मुकदमों के फैसलों से होता है। पार्लियामेण्ट का सदस्य किसी व्यक्ति को अपराध करते हुये देखकर भी पकड़ नहीं सकता। सरकारी रूप से किसी अपराधी के मुकदमों की छानबीन करके फैसला भी नहीं सुना सकता।

तो फिर उसका क्या काम होता है, यह ध्यान देने लायक बात है।

जिस कानून के अनुसार जज फैसला सुनाता है उसको किसने बनाया? जिस कानून के अनुसार अपराधी पकड़ा जाता है उस कानून को किसने बनाया। इन कानूनों को न तो जजों ने बनाया और न मंत्रियों ने बनाया। ये कानून पार्लियामेण्ट ने बनाये। बस राज्य के इस महकमे का काम यही होता है। यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण समस्या उठती है। राज्य के ये तीनों काम क्या एक ही संस्था को सौंप दिये जायँ या ये तीनों संस्थायें क्या एक दूसरे के अधीन रहें या न्याय विभाग क्या शासन विभाग के अधीन रहे? ये प्रश्न बहुत मोटे प्रश्न हैं और इनके जवाबों पर समाज का हित अहित निर्भर है।

अठारवीं सदी में फ्रांस में कुछ राजनैतिक विद्वान ऐसे हुए हैं कि जो कहते थे कि राज्य की ये तीनो शक्तियाँ तीन महकमों में विभाजित हों, इनका विकेन्द्रीयकरण हो, और फिर ये तीनों संस्थायें एक दूसरे से बिलकुल अलग अलग हों, आजाद हों। एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध न रहे। तीनों शक्तियों के प्रथक्करण पर ही समाज में न्याय कायम रह सकता है। ऐसे विद्वानों में मोंटेस्क्यू प्रसिद्ध है।

फ्रांस में और अमरीका में जो राज्य क्रांतियाँ हुईं वे भी मोंटेस्क्यू के जमाने में ही हुईं।

अमरीका की राज्य क्रांति के बाद सन् १७८२ में अमरीका का जो विधान बना वह मोंटेस्क्यू के मत पर बना। उस विधान में ये राज्य की तीनों शक्तियाँ प्रथक प्रथक रख दी गईं। पार्लियामेण्ट का शासन से कोई सम्बन्ध नहीं है और इन दोनों में से किसी एक का न्याय विभाग से कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक तरफ ब्रिटिश नमूने को देखो जहां मन्त्रिमण्डल का पार्लियामेण्ट से कितना घनिष्ट सम्बन्ध होता है। मन्त्रिमण्डल के सब मन्त्रियों को पार्लियामेण्ट का मेम्बर होना पड़ता है। पार्लिया-मेण्ट ही मन्त्रिमण्डल का निर्माण करती है और यह पार्लियामेण्ट मंत्रिमन्डल को चाहे जिस क्षण हटा सकती है।

दूसरी तरफ अमरीकी नमूना देखो, जहां पार्लियामेण्ट मन्त्रिमण्डल को हटा नहीं सकती और न ही मंत्रिमंडल को वहाँ

की पार्लियामेण्ट बनाती है। मंत्रिमंडल का कोई सदस्य पार्लियामेण्ट का मेम्बर नहीं हो सकता। यहां तक कि वह पार्लियामेण्ट में जा भी नहीं सकता। वहां भाषण नहीं दे सकता। सोचने की बात है कितना प्रथक्करण है।

सच तो यह है कि वहां के शासन को मन्त्रिमण्डल ही नहीं कहना चाहिए और न साधारणतया उसे मन्त्रिमण्डल कहा जाता है। वहां की जनता सीधी प्रेजीडेंट को चार साल के लिए चुनती है। चार साल तक शासन की बागडोर जनता उसी के हाथ में सौंपती है। वही हकुमत करता है। शासन के महकमों के दूसरे मंत्रियों की नियुक्ति प्रेजीडेंट ही करता है, वही हटाता है। उसी के प्रति वे जिम्मेदार हैं। वास्तव में इन मन्त्रियों का विधान में कोई स्थान नहीं है। ये प्रेजीडेंट की बनाई हुई चीजें होती हैं।

अमरीका यानी यू० एस० ए० के सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री का नाम कभी नहीं सुना गया। वहाँ प्राइमिनिस्टर होता ही नहीं। प्रेजीडेंट ही सब कुछ होता है। इस प्रकार अमरीका के प्रेजीडेंट में दो शक्तियाँ शामिल हैं। भारत व फ्रांस जैसी दूसरी रिपब्लिकों के प्रेजीडेंटों के जो काम होते हैं वे तो अमरीकी प्रेजीडेंट के हैं ही। इसके सिवाय हमारे यहां जो प्राइमिनिस्टरों यानी प्रधान मन्त्रियों के काम हैं वे भी अमरीका में प्रेजीडेंट ही करता है। इस प्रकार हमारे प्रेजीडेंट और अमरीकी प्रेजीडेंट में बहुत अन्तर है। इस अन्तर को

ध्यान में रखते हुये ब्रिटिश नमूनों और अमरीकी नमूनों के विधान शास्त्र में अलग अलग नाम हैं। ब्रिटिश नमूने को पार्लियामेण्टरी प्रणाली कहते हैं। अमरीकी नमूने को प्रेजीडेंशियल प्रणाली कहते हैं। शासन जहां पार्लियामेण्ट के आधीन होता है वहां पार्लियामेण्टरी प्रणाली और पार्लियामेण्ट से आजाद, प्रेजीडेंट के अधीन होता है वहां प्रेजीडेंशियल प्रणाली।

तो यह बात ध्यान में रखने की है कि जहां हमने डिमोक्रेसी के भवन की छत पर सर्वाधिकारी या प्रहरी रखा है, वह अमरीकी नमूनों में नहीं होता। अमरीकी नमूनों में तीन मंजिलें में ही काम खतम है। उसको छत पर प्रहरी नहीं होता है।

ऊपर की पक्तियों में राज्य व्यवस्था के दो प्रसिद्ध नमूनों से परिचय कराया गया है। एक तीसरा प्रसिद्ध नमूना भी है। राज काज के ढंग में जो नई नई बातें आजकल निकली हैं उन में रूसी प्रणाली का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटिश नमूना और अमरीकी नमूना दोनों पुराने नमूने हैं। अठारहवीं सदी के सामाजिक वातावरण को ध्यान में रखते हुए ये नमूने उस जमाने में बनाये गये थे। उसके बाद जीवन बहुत जटिल हो गया है। व्यावसायिक क्रान्ति से मजदूरों की नई दुनिया बन गई है। प्राणशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि विद्याओं की मदद से जीवन के नये मूल्य निकल आये हैं। पुराने महत्त्व कम पड़ गये हैं। नये महत्त्व आ गये हैं। जो चीज हीरा मानी जाती थी वह अब

केवल पत्थर मात्र ही रह गई है। जो चीज पत्थर मानी जाती थी उसमें मूल्य ढूंढ लिये गये हैं। महलों में क्या राग रंग उड़ता था, युद्धों में क्या फैसले होते थे, दिल्ली में कौन आता था, कौन जाता था, आदि बातों को जानना जनता अपना काम नहीं समझती थी। तार, रेडियो, अखबार, शिक्षा आदि ने अब एक नई परिस्थिति पैदा कर दी है। लकड़हारा शहर में लादा बेच कर सिर्फ गुड़ शक्कर ही नहीं ले जाता, वह यह समाचार भी पूछकर जाता है कि चुनाव कब होंगे। जन जाग्रति के इस युग में अठारहवी सदी के ढांचे ऊँटगाड़ी से लगते हैं।

नये वातावरण का कुछ आभास हमें रूसी विधान में मिलता है परन्तु इस विधान की नई बातें आगे बताई जायेंगी। यहाँ सिर्फ नमूनों पर जिक्र होने के कारण, इतना बता देना काफी होगा, कि रूसी जनतंत्र के तिमंजले पर भवन-व्यक्ति प्रहरी न होकर बत्तीस व्यक्तियों का समूह प्रहरी है। इस समूह प्रहरी को प्रेजिडियम कहते हैं। इसका एक प्रेजीडेंट सोलह वाइस प्रेजीडेंट और पन्द्रह मेम्बर होते हैं। शेष ढांचा लगभग ब्रिटिश नमूने पर है।

यह विषय खतम करने से पहले एक सावधानी कर देना जरूरी है। वह यह कि ब्रिटिश नमूनों के जनतंत्रों में पार्लियामेंट मंत्रिमंडल के हाथों का खिलौना मात्र होती है। प्रधान मंत्री और दूसरे मंत्री पार्लियामेण्ट की बहुमत पार्टी के नेता होते हैं। बहुमत पार्टी अपने नेताओं के विरुद्ध नहीं जा सकती। इस

प्रकार सरकार पार्लियामेण्ट से चाहे जैसा कानून पास करा सकती
है। इसलिये पार्लियामेण्ट को सर्वेसर्वा बनाना सरकार को ही
सर्वेसर्वा बनाना होता है। विधान की धारा २१वीं और २२वीं
व्यक्तियों की आज़ादी के सम्बन्ध में सरकार को ही सर्वेसर्वा
बना देती है। अदालतों को इस प्रकार सरकारों के अधीन कर
दिया है। इस दृष्टि से भी कहा जा सकता है कि भारत में
सरकार ही प्रधान है। धारा सभायें और अदालतें सरकारों के
ही अधीन हैं।

## पुस्तक दूसरी

# भारत का विधान

भारत का विधान बाइस भागों में बटा हुआ है। विधान के विषय बाईस हैं। इन बाइस में से कुछ विषय उप विषयों में भी बटे हुए हैं। इस विवेचन में विषयों को भाग और उपविषयों को अध्याय कहा जायगा। बाइस विषयों का यह विधान तीन सौ पचानवे धाराओं में बटा हुआ है।

पहले भागों में बताया गया है कि भारत में कौन कौन से और कौन कौन सी किस्म के सूबे रहेंगे। सूबों की घटा बढ़ी, तथा नए सूबों का निर्माण आदि भी इसी भाग में है।

दूसरे भाग में बताया गया है कि भारत का नागरिक कौन माना जायगा।

तीसरे भाग में मूल अधिकार गिनाए गये हैं।

चौथे भाग में स्टेट की नीति के सम्बन्ध में व भावी अफसरों को कुछ हिदायतें दी गई हैं।

पांचवें भाग में केन्द्रीय ढांचे का वर्णन किया गया है। प्रेजीडेण्ट तथा उसका चुनाव, उसके अधिकारी, वाइस प्रेजीडेण्ट, केन्द्रीय मन्त्री मन्डल, आदि का वर्णन है। इसी भाग में दूसरे अध्याय में पार्लियामेंट तथा उसकी दोनों सभाएं, पार्लियामेंट की

कार्य प्रणाली, उसके मेम्बरों के अधिकार, दोनों सभाओं के आपसी सम्बन्ध तथा जन सभा के विशेषाधिकार आदि बातें बताई गई हैं।

छटे भाग में प्रांतीय ढांचे का वर्णन है। गवर्नर और उसकी नियुक्ति, उसके कार्य, प्रांतीय मन्त्रि मंडल, प्रांतीय धारा सभा, आदि का वर्णन है। इसी भाग में प्रांतीय न्यायालयों का जिक्र है।

सातवें भाग में बताया गया है कि भूतपूर्व भारतीय रियासतों में वे सब बातें लागू होंगी जो छठे भाग में बताई गई हैं। जहां तहां नामों का फर्क बताया गया है जैसे गवर्नर की जगह राजप्रमुख होगा। उसके वेतन तथा मकान आदि के विषयों में विशेषता बताई गई है।

आठवें भाग में उन सबों का वर्णन जो केन्द्र के आधीन रहेंगे।

नवें भाग में अण्डमन, निकोबार आदि का वर्णन उनकी व्यवस्था के बारे में कीया गया है।

दसवें भाग में जंगली जातियों और उनके इलाकों की चर्चा है।

ग्यारहवें भाग में बताया गया है कि केन्द्र और प्रांतों के क्या सम्बन्ध रहेंगे।

बारहवें में खजाने रुपये पैसे आदि के सम्बन्ध की बाते हैं।

तेरहवें में व्यापार आदि की बाते हैं। यह कि सूबों में

शासन प्रणाली एक समान नहीं है। इस लिये अधिकार और शासन प्रणाली के लिहाज से इन राज्यों को तीन भागों में बाँटा गया है। पहले भाग में नौ राज्य हैं। वे नौ राज्य वे प्रदेश हैं जिन्हें पहले ब्रिटिश भारत के प्रान्त कहते थे, और जिनमें १९३५ के ऐक्ट के अनुसार सन् १९३७ से अधिक रूप से कांग्रेस सरकारें चली आ रही थी। इसके पहले भी १९१९ के ऐक्ट से भी इन राज्यों में असेम्बलियां व मन्त्री मण्डल बनने लग गये थे। इस प्रकार ये नौ राज्य प्रजातन्त्र का कुछ अनुभव रखते थे। कुछ नेतृत्व भी इन राज्यों का परिपक्व अवस्था में आ गया था। इस प्रकार इसलिये नयी व्यवस्था से इन नौ सूबों को विधान ने अधिक से अधिक अधिकार दिये हैं। इनकी अपनी असेम्बलियाँ होंगी, अपने मन्त्री मण्डल होंगे। इनकी अपनी सरकार होगी। सातवी सिड्यूल में जो इनके अधिकार बताये गये हैं उनके शासन के सम्बन्ध में केन्द्र हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

इन राज्यों के नाम ये हैं (१) आसाम (२) बंगाल (३) बिहार (४) बम्बई (५) कोशल विदर्भ (६) मद्रास (७) उड़ीसा (८) पंजाब (९) उत्तर प्रदेश।

इन राज्यों को जो अधिकार सौंपे में और जिनमें केन्द्र हस्तक्षेप नहीं कर सकता, वे कुछ ये हैं।

(१) कानून व्यवस्था (२) पुलिस (३) छोटी अदालतें। राज्यों की हाईकोर्ट, केन्द्र का विषय है।

(४) जेलखाने और कैदी (५) म्यूनिसिपैलिटी व डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (६) अस्पताल (७) शिक्षा (८) सड़कें पुल आदि (९) खेती बाड़ी (१०) नहरें (११) कारखाने (१२) माल का महकमा (१३) भिन्न भिन्न प्रकार के कर। इस प्रकार (६६) छासठ विषय इन राज्यों को दिये गये हैं। इन छासठ के सिवाय कुछ और विषय हैं जिन पर केन्द्र का और इन राज्यों का समान रूप से अधिकार है।

इन सूबों के सर्वोच्चाधिकारी को गवर्नर कहते हैं। गवर्नर की नियुक्ति केन्द्र का प्रेजीडेण्ट करेगा। गवर्नर का कार्य काल पांच साल का होगा। इन पांच सालों में भी प्रेजीडेण्ट गवर्नर को चाहे जब हटा सकता है।

राज्यों की सरकारों का सविस्तार वर्णन आगे किया जायगा।

दूसरे भाग में वे राज्य रखे गये हैं जो अङ्गरेजी शासन में देशी राजाओं के आधीन थे। ऐसे राज्य ५६२ के आसपास थे। इन सब को इकठ्ठा करके नौ राज्यों में रख दिया है। नेतृत्व की कमी के कारण और प्रजातन्त्र सम्बन्धी अनुभव-हीनता के कारण इन राज्यों के अधिकार कुछ समय के लिये सीमित है। विधान की ३७१ वीं धारा में यह बताया गया है कि विधान लागू होने के बाद दस वर्ष तक ये नौ राज्य केन्द्र की देख रेख में अपना शासन करेंगे। इस प्रकार इस धारामें ३७१ के अनुसार केन्द्र इन राज्योंके दैनिक शासनमें हस्तक्षेप कर सकता है।

दूसरा मोटा फर्क जो भाग एक और भाग दो के राज्यों में है कि गवर्नर की नियुक्ति सिर्फ पांच साल के लिये होगी और इस बीच में भी हटाया जा सकता है। परन्तु भाग दो के राजप्रमुखों के विषय में यह बात नहीं है। ये राजप्रमुख पैतृक अधिकारों से बनेगें और अपने जीवन काल में हट नहीं सकते। ये सब बातें विधान में नहीं लिखी गई हैं। ये शर्तें उन इकरार नामों में हैं जो राजाओं के और केन्द्रीय सरकार के बीच हुए हैं।

इन दो फर्कों को छोड़कर बाकी सब बातें भाग एक से मिलती हैं।

इन दूसरी किस्म के राज्यों के नाम ये हैं।

(१) हैदराबाद (२) जम्मू और काश्मीर (३) मध्य भारत (४) मैसूर (५) पटियाला तथा पूर्वी पंजाब की रियासतों का संघ (६) राजस्थान (७) सौराष्ट्र (८) ट्रावनकोर-कोचीन (९) विंध्यप्रदेश।

तीसरे भाग के राज्य शासन प्रणाली की दृष्टि से बिलकुल भिन्न श्रेणी के है। इनकी शासन प्रणाली पहले दूसरे भागों के राज्यों से बिलकुल नहीं मिलती।

इन तीसरी किस्म के राज्यों में अपनी सरकारें नहीं होगी और न उनके कोई अधिकार होंगे। हर प्रकार से ये राज्य केन्द्र के अधीन रहेंगे और केन्द्रीय सरकार ही इनकी सरकार होगी। ऐसे राज्य दो किस्म के प्रदेशों से बनाए गये हैं। कुछ इलाके तो ऐसे हैं जो अङ्गरेजों के वक्त में ही केन्द्र के शासन में थे जैसे दिल्ली अजमेर आदि। कुछ वे इलाके हैं जो देशी राजाओं के

अधीन थे जैसे भूपाल बिलासपुर आदि। इन राज्यों के नाम ये हैं-

(१) अजमेर (२) भूपाल (३) बिलासपुर (४) कूचविहार (५) कुर्ग (६) दिल्ली (७) हिमाचल प्रदेश (८) कच्छ (९) मनीपुर (१०) त्रिपुरा। इस प्रकार ये दस राज्य हैं।

विधान के इस पहले भाग में चार धारायें हैं। जिनकी बातें ऊपर लिख दी है।

## भाग २

ऊपर भारत देश के भिन्न भिन्न प्रदेशों का विश्लेषण किया गया था। अब दूसरे भाग के अनुसार प्रश्न यह उठता है कि भारत का नागरिक कौन माना जायेगा। नागरिक का अर्थ नगर निवासी से नहीं होता। देहात के रहने वाले भी नागरिक ही कहलाते हैं। यह शब्द प्रचलित इसलिये हो गया है कि प्राचीन यूनान में नगर राज्य होते थे। देहात उनमें शामिल नहीं होते थे। राज की तरफ से सुरक्षा तथा सुप्रबन्ध की बातें सिर्फ उन नगर निवासियों को ही उपलब्ध थी। देहातियों को यह विशेषाधिकार प्राप्त नहीं थे। प्रस्तावों तथा बिलों पर मत देने का अधिकार भी उन नगरों के निवासियों को ही था। आगे चल कर इस शब्द के अर्थ को विस्तृत कर दिया गया और देहात भी इस अर्थ में शामिल कर लिये गये।

तो नागरिक उन व्यक्तियों को कहते हैं जिनको राज्य में होने वाले लाभ प्राप्त हों, जैसे भिन्न भिन्न चुनावों में मत देने

का अधिकार, भिन्न भिन्न पदों के लिये उम्मेदवार स्वरूप खडे होने का अधिकार, शिक्षा स्वास्थ्य सम्बन्धी किये गये प्रबन्धों से लाभ उठाने का अधिकार, राज्य की नौकरी करने का अधिकार आदि हकूक जिन लोगों को प्राप्त हो उन्हें नागरिक कहते हैं। इसके दूसरी तरफ, राज्य के भी कुछ अधिकार होते हैं। राज्य भी इनसे कर वसूल कर सकता है, इनसे सुरक्षा आदि के लिये जबरदस्ती से काम लिया जा सकता है। इस प्रकार अधिकार और कर्त्तव्यों से पूर्ण जो व्यक्ति होता है उसे नागरिक कहते हैं। तो ऐसे नागरिक भारत में कौन माने जायेंगे, ये बातें भाग दो में लिखी है।

इस भाग के अनुसार नागरिक वह होगा जो- विधान के लागू होने के समय भारत का निवासी होगा और नीचे लिखी तीन बातों में से कम से कम एक बात उसमें पाई जायगी।

(१) भारत की धरती पर पैदा हुआ हो या

(२) मां बाप में से कोई एक भारत की धरती पर पैदा हुआ हो या

(३) विधान लागू होने से कम से कम पांच बरस पहले से यहां रहता आया हो।

विधान का लागू होना २६ जनवरी सन् १९५० माना जाता है।

## भाग ३, मूल अधिकार

पीछे दूसरे भाग में बताया गया है कि भारत का नागरिक

कौन होगा। अब इस भाग में यह बताया जायेगा कि भारत के नागरिक के मूल अधिकार क्या होंगे। अधिकार दो किस्म के होते हैं। एक मूल अधिकार कहलाते हैं और दूसरे साधारण अधिकार। मूल अधिकारों की विशेषता यह होती है कि ये अधिकार विधान में दिये हुये होते हैं और जीवन के लिये इतने जरुरी माने जाते हैं कि इन अधिकारों को आगे आने वाली कोई भी सरकार छीन नहीं सकती। ये अधिकारी जीवन के सजीव अंग होते हैं। इनके छिन जाने के पर जीवन अधूरा हो जाता है।

साधारण अधिकारों का जहां तक सम्बन्ध है, समय, परिस्थिति आदि के अनुसार ये अधिकार घटते बढ़ते रहते हैं।

पीछे के दो भागों में जो बातें हैं वे लगभग निर्विवाद हैं। परन्तु अब हम ऐसे विषय पर पहुँच गये है जो बहुत ही विवादास्पद है। यह भाग उस विषय की चर्चा करता है जो राजनीति शास्त्र तथा विधान शास्त्र का बहुत ही मतभेद रखने वाला विषय है। मतभेदों को छेड़ने से पहले इन अधिकारों की व्याख्या कर देनी आवश्यक है।

ये मूल अधिकार ५ भागों में बांटे जा सकते हैं। (१) समानता के अधिकार (२) स्वतन्त्रता के अधिकार, (३) शिक्षा व संस्कृति के अधिकार (४) सम्पत्ति के अधिकार और अन्तिम (५) सविधान के अधिकार। कैसी संयोग की बात है कि सब अधिकार 'स' से आरम्भ होते हैं।

(१) समानता से मतलब कोई रुपये पैसे, धन दौलत की समानता से नहीं है। अदालतों में भेदभाव नहीं बरता जायेगा; धर्म, जाति, नसल, लिंग, जन्म स्थान आदि के कारण कोई भेदभाव नहीं रखा जायेगा; दुकानों में प्रवेश, होटलों में प्रवेश, कुये तालाबों, के इस्तेमाल से किसी को नहीं रोका जायेगा। नौकरी चाकरी में सबको समान अवसर दिया जायेगा। लिंग भेद, जाति भेद, धर्म भेद आदि के कारण किसी को किसी भी सरकारी नौकरी से अलग नहीं रखा जायेगा। अछूतपने का रिवाज बन्द किया जाता है।

(२) दूसरी किस्म का जो अधिकार है वह स्वतन्त्रता सम्बन्धी है। सबको बोल चाल की स्वतन्त्रता रहेगी; मिटिंग करने की, यूनियन बनाने की आजादी रहेगी; भारत के किसी भी हिस्से में निवास स्थान बनाया जा सकता है; सम्पत्ति रखने बेचने, और इकट्ठी करने की आजादी रहेगी। किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण किसी कानून के अनुसार ही किया जा सकता है, मनमाने तरीके से कोई नहीं कर सकता। पकड़ा हुआ आदमी अपना वकील कर सकता है। पकड़ने के बाद २४ घन्टे के भीतर भीतर अपराधी को मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायेगा। भारत में ऐसा कोई कानून नहीं बन सकता जो किसी व्यक्ति को तीन महीने से ज्यादा अकारण रोक सके। अगर तीन महीने से ऊपर रोकना हो तो सलाहकार समिति की सलाह जरूरी होगी।

तीन महीने से ऊपर तक रोकने का कानून केन्द्रीय पार्लियामेंट ही बना सकती है। इस कानून को राज्य की असेंबलियाँ नहीं बना सकतीं।

तीसरी श्रेणी के मूल अधिकार शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी हैं। इनमें बताया गया है कि प्रत्येक जाति व धर्म को अपनी भाषा, अपनी लिपि, तथा अपनी संस्कृति को कायम रखने का अधिकार होगा। किसी भी शिक्षण संस्था में जिसे राज्य से रुपये की मदद मिलती हो, कोई भी नागरिक भर्ती हो सकता है।

चौथे अधिकार सम्पत्ति के हैं। किसी की सम्पत्ति का अपहरण नहीं किया जायेगा। अगर अपहरण किया जायेगा तो किसी कानून से किया जायेगा। अगर किसी की सम्पत्ति लेने का कानून बनाया जायेगा तो उस कानून में यह लिखा जावेगा कि इस सम्पत्ति के बदले में उसे क्या मिलेगा। ऐसा कानून अगर कोई राज्य बनायेगा तो उस पर केन्द्रीय प्रेजीडैण्ट के दस्तखत जरूरी होंगे। इन बातों से असन्तुष्ट होने की सूरत में कोई भी व्यक्ति अदालत में जा सकता है। परन्तु कुछ सूरतों में अदालतों की शरण नहीं ली जा सकती। विधान के शुरु होने के समय अगर कोई बिल सम्पत्ति के सम्बन्ध में किसी धारासभा में चल रहा हो तो उसके सम्बन्ध में अदालतों का हस्तक्षेप नहीं होगा। दूसरी सूरत यह है कि विधान के शुरु होने के १८ महीने पहिले भी अगर कोई कानून इस प्रकार का बन गया हो,

उस पर भी असन्तुष्ट व्यक्ति अदालतों में नहीं जा सकते।

पांचवी श्रेणी के अधिकारों में बताया गया है, कि इन मूल अधिकारों के ठेस पहुँचने पर सुप्रीमकोर्ट अथवा राज्यों की हाईकोर्टों की शरण ली जा सकती है। इन दोनों अदालतों को अधिकार है कि वे इन मूल अधिकारों की रक्षा करें और असंतुष्ट व्यक्ति के, छिने हुये अधिकारों की वापिसी दिलवावें।

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, ये अधिकार आलोचना से परे नहीं हैं। विधान सभा में, प्रेस में, प्रमुख व्यक्तियों में सभी जगह इनकी चर्चा चलती है।

हमारी आलोचना, इन अधिकारों के सम्बन्ध में, तीन आधारों पर होगी। पहले, वे अधिकार जो दिये नहीं गये है, दूसरे, वे अधिकार जो दिये गये हैं, परन्तु साथ ही उनको छीन लेने का इन्तजाम कर दिया गया है। तीसरे, दिये हुये अधिकारों के पीछे कोई सिद्धान्त नही हैं। उनका स्वरूप ऐसा टूटा फूटा है मानों संविधान के सदस्यों ने बच्चों का सा खेल रचा हो।

दिये हुये अधिकारों पर जो पाबन्दी लगाई गई हैं और आसानी से उनको छीन लेने के जो प्रबन्ध किये गये हैं वे सब चीजें इन अधिकारों पर विश्वास नहीं जमने देती। जैसा कि इन पंक्तियों का शीर्षक बताया है ये अधिकार तीसरे भाग में रखे गये हैं। यह तीसरा भाग धारा १२ से लेकर धारा ३५ तक है। समानता के अधिकार १४ से १८ तक हैं। स्वतन्त्रता के अधिकार १९ से २८ तक हैं। शिक्षा और संस्कृति के अधिकार २९ से

३० तक, और सम्पत्ति के अधिकार धारा ३१ में बताये गये हैं। ३२ से ३५ तक की धारायें कानून की मदद लेने के अधिकार देती हैं। ये धारायें इसलिए दी हैं कि इनका विश्लेषण आसान हो जाय।

जहां तक समानता के अधिकारों का सम्बन्ध है, विधान में दी हुई समानतायें नई नहीं हैं। योरप और अमरिका में ये समानतायें अठाहरवीं सदी में अमरीका और फ्रांसी क्रांति के साथ आई थीं। अमरीका के विधान में सन् १७८३ में ये समानतायें रखी गई थीं। फ्रांस में १७६३ में वहां के विधान में रखी गई थीं। फ्रांस की क्रान्ति समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृता के नारों पर लड़ी गई थी। लेकिन आज २०० वर्ष के बाद भी वहां समानता आई नहीं।

दूर जाने की जरूरत नहीं, भारत में भी अंग्रेजी घोषणाओं और कानूनों आदि में साफ कहा है कि जाति-धर्म, रूप-रंग का भेद भाव किसी भी क्षेत्र में नहीं रखा जायगा। कानून के सामने सब बराबर रहेंगे। लेकिन घोषणाओं और कानूनों के डेढ़सो वर्ष बाद भी समानता आई नहीं।

क्यों नहीं आई! क्या कमी है इन पवित्र घोषणाओं में, आदि प्रश्नों का उत्तर इस विवेचन के अन्त में दिया जायगा।

परन्तु फिर भी जो समानतायें दी हैं, उनके लिये भी जगह जगह प्रतिबन्ध लगा दिये हैं। इन्हीं प्रतिबन्धों के अनुसार जहां एक तरफ विधान लागू, दूसरी तरफ प्रेजीडेण्ट के ओर्डिनेंस

पर ऑर्डिनेंस निकलने शुरु हुये। ऐसे ही ऑर्डिनेन्सों में एक यह भी है कि औरतें फ़ौज में भरती होने की मांग नहीं कर सकतीं।

इसी प्रकार स्वतन्त्रता के नाकाफी अधिकारों पर भी पाबन्दियाँ लगा रखी हैं। इन अधिकारों की आलोचना के उत्तर में कहा जाता था कि ये प्रतिबन्ध सिर्फ लगाने के होते हैं प्रयोग में नहीं होते हैं। इस सम्बन्ध में धारायें २१वीं और २२वीं विचारणीय हैं। २१ वीं धारा कहती है कि किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं किया जायगा। अगर किया जायगा तो क़ानून के मुताबिक किया जायगा। लेकिन सोचने की बात यह है कि क़ानून तो चाहे जैसा बन सकता है। पालियामेण्ट की बहुमत पार्टी क़ानून बनाती है। ५१ फीसदी के बहुमत से ४६ फीसदी का गला घोंटा जा सकता है।

इस कमी को दूर करने की कोशिश २२वीं धारा में की गई है। इस धारा की चौथी उपधारा बताती है कि भारत में ऐसा क़ानून बन ही नहीं सकता जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को तीन महीने से ज्यादा अकारण रोका जा सके। लेकिन इस टूटी फूटी आज़ादी को इसी धारा की सातवीं उपधारा ने नटिया मेट कर दिया गया है। यह उपधारा केन्द्रीय पालियामेण्ट को खुली छूट देती है। पालियामेण्ट इस हक़ को छीन कर ऐसा क़ानून बना सकती है जिसके अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना कारण ही अनिश्चित समय के लिये कैद में रखा जा सकता

है और जानने लायक बात तो यह है कि जनतन्त्र का जन्म होते ही इस उपधारा को जनता की पार्लियामेण्ट ने काम में ले लिया है। और रोचक बात यह है कि जहां कानून के बनने में छपते ही नहीं महीने लगते हैं, यह कानून शनिवार के दिन कुछ घन्टों में बन कर तैयार हो गया है। इस पर प्रश्न यह उठता है कि इसकी आवश्यकता क्या पड़ी और फिर इतनी जल्दी क्यों ?

भारत की लगभग सभी हाइकोर्टों ने यह घोषणा करदी कि किसी व्यक्ति को अकारण रोकना विधान की २२ वीं धारा के खिलाफ है। राज्यों के सेफ्टी एक्ट भी ग़लत करार दे दिये गये। कलकत्ता हाइकोर्ट के सामने भी ऐसे ही मामले आये। फुलबेंच ने तारीख दे दी कि सोमवार तारीख २७ फरवरी को मुकदमे सुने जायगे। कलकत्ते की जेलों में लगभग ३५० कैदी अकारण पकड़े हुये थे। जब यह समाचार दिल्ली पहुँचा तो झट पार्लियामेण्ट ने दो दिन पहले ही कानून बना दिया।

इस बात को इतने विस्तार से लिखना नहीं चाहिए था, पर इन बातों के महत्त्व को देखकर ऐसा किया गया है। बम्बई हाइकोर्ट ने तो यहां तक कहा कि सरकारी शक्ति का यह महान दुरुपयोग है। मूल अधिकारों की धारा ३१ वीं यह साफ बताती है कि स्वार्थों में फंसे हुये लोग किस किस्म के कानून बनाते है। प्रश्न यह था कि किसी कारखाने या खेत का अगर राष्ट्रीय करण किया जाय तो इन सम्पत्तियों के मालिकों के इस सम्बन्ध में क्या अधिकार होंगे। बरसों की बहस के बाद यह

मान लिया गया कि उसे मुआवजा दिया जाय। उसकी क्षति पूर्ति की जाय और असन्तुष्ट हो तो अदालत में जाय। लेकिन इसमें कठिनाई यह आई कि लखनऊ की सरकार की इतने वरसों की मेहनत फिजूल जायगी। लखनऊ की सरकार के प्रधान मन्त्री की चलती बहुत थी। उसका भूमि सम्बन्धी विल पास करना जरूरी था। उत्तर प्रदेश के भूमिपति अगर अदालत में जायगे कि हमारी क्षति पूर्ति न्यायपूर्ण नहीं है तो फिर तो उत्तर प्रदेश के नेतृत्व में बट्टा लगेगा। ३१ वीं धारा की चौथी उपधारा इसलिये जोड़ी गई कि यह राज्य अपना काम विशेष शान्ति से बना ले।

ऐसा होते ही मद्रास और बिहार के राज्य खड़े हो कर कहने लगे, साहब हमारे यहां तो कानून ही बन गया। जहां आप बिलों की रक्षा करते हैं, वहां कानूनों की न करना हास्यास्पद बात बन जाती है। मद्रास बिहार की दलील सही मान ली गई और छठी उपधारा जोड़ दी गई।

इस प्रकार देश के भूमिपति और पूंजीपतियों की रक्षा भी हो गई और दो तीन खास खास मामले भी बना लिये गये। सम्पत्ति के सम्बन्ध की इस मशहूर धारा से सारांश यही निकलता है कि जिन तीन राज्यों के नाम इस धारा में गिनाये गये हैं उनको छोड़कर बाकी की जमींदारियां खतम नहीं हो सकतीं। राज्यों के राष्ट्रीय करण का सवाल ही नहीं उठता।

धारा ३२ वीं में दिया गया है कि मूल अधिकारों में [illegible]

पहुंचने पर दिल्ली की सुप्रीमकोर्ट अथवा राज्यों की हाइकोर्टों में पुकार की जा सकती है।

धारा ३३ वीं पार्लियामेण्ट को अधिकार देती है कि फौज के सदस्यों को इन अधिकारों से वंचित कर सकती है। और प्रेजीडैण्ट-के एक ओर्डिनेन्स के अनुसार इसमें रोक भी लगा दी गई है। हमने ऊपर बताया है कि समानता के अधिकार तो गोलमाल हैं।

जहां तक स्वतन्त्रता के अधिकारों की बात है, १६ से २२ वीं धारायें महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु जैसा कि ऊपर बताया है, १६ वीं धारा में बोल चाल, सभा, मिटिंग, संगठन आदि की स्वतन्त्रता दी है, पर साथ ही कह दिया है, इसी १६ वीं धारा में कि मौजूदा कानून जैसे फौजदारी के १४४, १२४ आदि चालू रहेंगे। यही बात २०, २१, और २२ वीं धारा की है। जायदाद सम्बन्धी ३१ वीं धारा तो अपने छिछोरेपन के लिये हमेशा मशहूर रहेगी।

परन्तु हमारी जो खास शिकायत है वह तो दूसरी ही है। जैसा कि हमने ऊपर बताया है ये अधिकार अठारहवे सदी के पवित्र वायदे हैं। अब हम रूस के विधान की कुछ धारायें देखें।

११८ की धारा वायदा कराती है कि प्रत्येक नागरिक को काम मिलेगा और काम की मात्रा और मूल्य के लिहाज से इस काम के पैसे मिलेंगे।

११९ वीं धारा विश्राम और अवकाश की गारंटी देती है।

१२० वीं धारा बुढ़ापे की पेन्सन, बिमारी की और अंग-भंग की पेन्सन का प्रबन्ध करती है।

१२१ वीं धारा मुफ्त शिक्षा का अधिकार देती है।

१२५, १२७, और १२८ की धारायें स्वतन्त्रता के बारे में हैं। इनमें स्वतन्त्रता के उपभोग के लिये सुभीते दिये गये हैं। रूस का यह विधान १९३६ में बनाया था।

दूसरे महायुद्ध के बाद सन् १९४६ और १९४७ में जो विधान पूर्वी योरप के देशों में बने हैं, वे सभी रूसी विधान से मिलते जुलते हैं उदाहरण के लिये हंगरी के विधान की ४५, ४६, ४७ और ४८ की धारायें इसी किस्म के अधिकार देती हैं।

हिन्दुस्तान में लाखों स्कूलों की जरूरत है, नहरों की, सड़कों की, अस्पतालों की, कारखानों की जल्दी से जल्दी आवश्यकता है पर फिर भी विधान काम का अधिकार देने की हिम्मत नहीं कर सका, इससे बड़ा अचम्भा इस विधान के ऊपर दूसरा क्या हो सकता है।

## भाग ४
### राजकीय नीति की हिदायतें

बीसवीं सदी के ठीक बीच में बना हुआ विधान ठीक अठारहवीं सदी का सा लगे, इस ढंग पर हर एक प्रगतिशील व्यक्ति व संस्था ने अचम्भा किया। विधान जब बनाया जा रहा

था, चारों तरफ से इस बात की आलोचना होने लगी कि बीसवीं सदी के विधान में जो सबसे पहली बात होनी चाहिये वह आर्थिक जनतंत्र की है। आर्थिक समानता का अगर प्रबन्ध कहीं नहीं किया गया है तो समझ लेना चाहिये यह कोरा कागजी काम ही है।

भारत के विधान में आर्थिक जनतंत्र की कुछ व्यवस्था की गई है। और यह चौथे भाग में है। इस भाग में ३६ से ५१ तक की धारायें हैं, इनमें धारा ३६ वीं विचारणीय है। यह धारा राज्य को हिदायतें देती है कि—

(१) भारत के प्रत्येक नागरिक को जीविका के पर्याप्त साधन दिये जायें।

(२) आर्थिक साधनों का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार किया जाय कि उसमें सब को लाभ पहुँचे।

(३) आर्थिक व्यवस्था की मशीन इस प्रकार न चले कि दौलत सारी एक जगह इकट्ठी हो जाय और फिर सब को हानि पहुँचे।

धारा ४१ भी महत्वपूर्ण है। यह धारा हिदायत करती है कि हरएक आदमी को काम दिया जाय, शिक्षा दी जाय, बुढापे की बिमारी की और अंग भंग की पेन्सन दी जाय और बेकारी में रोक थाम लगाई जाय।

आगे चलकर धारा ४५ वीं भी मतलब की बात कहती है। इसमें लिखा है कि विधान शुरु होने के बाद दस साल के भीतर

का विधान भिन्न है। वहां के वाइस प्रेसीडेन्ट के लिए इस प्रकार की अवधि नहीं है।

**वाइस प्रेसीडेन्ट**—वाइस प्रेसीडेन्ट का चुनाव केन्द्रीय पार्लियामेण्ट के दोनों भवन मिलकर करेंगे। प्रेसीडेन्ट के चुनाव की तरह इसमें राज्यों की एसेम्बलियों की जरूरत नहीं। प्रेसीडेण्ट के चुनाव की तरह, वाइस प्रेसीडेन्ट के चुनाव में भी जो निर्वाचन प्रणाली बरती जायगी वह भी संख्यानुसार हस्तान्तरित वोट की प्रणाली होगी।

वाइस प्रेसीडेन्ट पार्लियामेण्ट की ऊपरी सभा का सभापति होगा।

**प्रेसीडेन्ट के अधिकार**—जैसा कि पहले भी बता दिया गया है और यह बात फिर दोहरा दी जाय तो कोई हर्ज नहीं कि प्रेसीडेन्ट अपने अधिकार मन्त्री मण्डल की सलाह से ही बरतता है। मन्त्रिमंडल अपनी बैठक में एक निर्णय पर पहुँचता है। उस निर्णय को लेकर प्रधानमन्त्री प्रेसीडेन्ट के पेश होता है और उस निश्चित निर्णय के अनुसार कदम उठाने की सलाह देता है। इस प्रकार प्रेसीडेन्ट के कार्यों की जिम्मेदारी मन्त्रि-मंडल पर आती है। गलत कदम उठजाने पर पार्लियामेण्ट के सामने जिम्मेदारी प्रेसीडेन्ट की न होकर, मन्त्रि मंडल की होती है। ये बातें विधान में कहीं लिखी हुई नहीं हैं। वरन् सारा ढांचा इस प्रकार का बना हुआ होता है कि सिवाय इस प्रणाली के दूसरी प्रणाली सम्भव नहीं। प्रधान-

मंत्री भी शासन का प्रमुख होता है और प्रेजीडेन्ट भी शासन का प्रमुख होता है। प्रधानमन्त्री के पीछे पार्लियामेण्ट में हर क्षण और हर घड़ी बहुमत का बल होता है। पार्लियामेण्ट बहुमत की कमी आते ही हट जाता है। प्रेजीडैन्ट पांच साल की अवधि के लिये चुना हुआ होता है, इसलिए किसी क्षण उसके पीछे पार्लियामेन्ट के बहुमत हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता। इसके सिवाय प्रेजीडेन्ट ऊपरी सभा और राज्यों की सभा से भी चुना गया है। ऐसी हालत में केन्द्रीय पार्लियामेण्ट की जन सभा में प्रेजीडेन्ट का बहुमत किसी भी समय न हो ऐसा भी हो सकता है। परंतु मंत्रि मंडल का बहुमत केवल जन सभा में ही आवश्यक है और केवल जन सभा के प्रति ही वह जिम्मेदार होता है, इसलिए जन सभा की नीति पर मन्त्रि मंडल को चलना पड़ता है। मन्त्रि मंडल की बात अगर प्रेजी-डैन्ट न माने, या प्रेजीडेन्ट अपनी मर्जी से, बिना सलाह के कुछ करता है, तो मन्त्रि मंडल फौरन इस्तीफा दे देगा। इस प्रकार राज्य की मशीन में बड़ी भारी रोक थाम लग जायगी। तो स्पष्ट हुआ कि प्रेजीडैन्ट अपने आप कुछ करने में असमर्थ है। इसीलिए कहा गया है कि हकुमत वास्तव में पार्लियामेण्ट करती है और प्रधान मन्त्री पार्लियामेण्ट का प्रतिनिधि है। प्रेजीडेन्ट पार्लियामेण्ट का यानी जन सभा का प्रतिनिधि नहीं है। पार्लियामेण्ट में तो कानून की नजरों में तीन संस्थायें शामिल हैं प्रेजीन्डैट, ऊपरी सभा और जन सभा।

(३) पार्लियामेण्ट की जनसभा को नये चुनाव के लिये भंग करना।

(४) पार्लियामेण्ट के भवनोंमें जाकर भाषण कर सकता है।

(५) किसी बिल के सम्बन्ध में पार्लियामेण्ट में कोई सम्वाद भेज सकता है, और पार्लियामेण्ट को उस पर जल्दी से जल्दी विचार करना पड़ता है।

(६) प्रत्येक अधिवेशन के शुरु में पार्लियामेण्ट की दोनों सभाओं की सम्मिलित बैठक में, प्रेजीडेंट भाषण करेगा, और पार्लियामेण्ट के अधिवेशन को बुलाने का कारण बतायगा। (धारायें ८५ से ८७)

(७) रुपये पैसे से सम्बन्ध रखने वाले बिल, जैसे टैक्स लगाना और हटाना, कोई खर्च करना, प्रेजीडेंट की सिफारिस से ही जनसभा में पेश किये जा सकते हैं। कोई प्राईवेट मेम्बर मनी बिल प्रस्तावित नहीं कर सकता। (धारा ११७)

(८) प्रत्येक किस्म का बिल जब पार्लियामेण्ट के दोनों भवनों से पास हो जाता है, तो उसे अनिवार्य रूप से प्रेजीडेंट के सामने हस्ताक्षर के लिये रखा जाता है। प्रेजीडेंट इनकार भी कर सकता है परन्तु दूसरी बार इनकार नहीं कर सकता। (धारा १११)

[illegible] प्रेजीडेंट और दोनों सभायें मिल[illegible] है। [illegible] सम्मिलित नाम है।

किसी प्रस्ताव पर, बिल पर, तीनों सहमत होते हैं तभी यह बिल कानून के रूप में आ सकता है। ऊपर के प्रेजीडेंट के अधिकार धारा निर्माण सम्बन्धी हैं। परन्तु हैं पार्लियामेण्ट के साथ में अलग नहीं।

अब हम प्रेजीडेंट के धारा निर्माण के सम्बन्ध में अधिकारों को एक नई परिस्थिति की दृष्टि से विचार करते हैं पार्लियामेण्ट का अधिवेशन नहीं चल रहा है। मेम्बर लोग अपने अपने घरों में हैं। कोई ऐसा जरूरी काम हो गया जिसमें एक नये कानून की जरूरत है। ऐसे कानून की इतनी जरूरत है कि पार्लियामेण्ट को बुलाने और बहस करने की बाट नहीं देखी जा सकती। ऐसी हालत में प्रेजीडेंट को अधिकार है कि वह अकेला कानून बना सकता है। तब प्रेजीडेंट के ऐसे कानून को आर्डिनेंस कहते हैं। ओर्डिनेंस कानून को ही कहते हैं। परन्तु क्योंकि कानून तीन संस्थाओं द्वारा पास किया जाता है, इसलिए उस कानून से भिन्नता दिखाने के लिये इसका नाम ओर्डिनेंस रखा हुआ है। प्रेजीडेंट को यह अधिकार धारा १२३ में दिया हुआ है। इस धारा में ओर्डिनेंसों की एक अवधि रखी हुई है। पार्लियामेण्ट की बैठक होने पर छः हफ्ते से ज्यादा ये ओर्डिनेंस नहीं चल सकते।

## प्रेजीडैंण्ट के जुडिशियल अधिकार

(१) सुप्रीम कोर्ट के जजों की नियुक्ति प्रेजीडैंट करेगा।

होने चाहियें। एक तिहाई को एसेम्बलियों के मेम्बर चुनेंगे, परन्तु ये उम्मेदवार उस एसेम्बली के मेम्बर नहीं होने चाहिये। शेष को गवर्नर नामजद करेगा।

लेजिस्लेटिव कौंसिल भंग नहीं की जा सकती। परन्तु उसके एक तिहाई सदस्य हर दूसरे साल रिटायर किये जायेंगे। कौंसिल के सदस्य की उम्र कम से कम ३० साल की होनी चाहिये।

कौंसिल के अधिकार केंद्र की राजसभा से कम हैं। रुपया सम्बन्धी मामलों में तो दोनों संस्थाओं में समानता है। दूसरे बिलों में, सम्मिलित बैठकों का प्रान्तों में कोई प्रबंध नहीं है। लेजिस्लेटिव एसेम्बली एक बिल को पास करके कौंसिल में भेजती है, कौंसिल उसे पास नहीं करती और वापिस एसेम्बली में भेज देती है। एसेम्बली दूसरी बार पास करके उसी बिल को फिर कौंसि
भेजती है। इस बार भी कौंसिल उस बिल को ठुकरा दे
दूसरी बार कौंसिल द्वारा ठुकरा दिए जाने पर भी
सभाओं द्वारा पास हुआ माना जायेगा।

# भाग सात

## दूसरी श्रेणी के राज्य

दूसरी श्रेणी के राज्य जनतांत्रिक ढाचे में पहली श्रेणी से मिलते हैं। छोटे मोटे फर्क इस प्रकार हैं।

(१) गर्वनर की जगह का प्रधान राजप्रमुख कहलायेगा।

(२) गर्वनर जहां पाच वर्ष के लिये प्रेजीडेंट द्वारा नियुक्त किया जाता है, राजप्रमुख आजीवन होता है, बल्कि कहना चाहिये पैतृक होता है।

(३) दूसरी श्रेणी के राज्यों पर धारा ३७१ के अनुसार केन्द्र की देख रेख रहेगी।

(४) सेना का इन्तजाम यद्यपि केन्द्र करेगा, पर राजप्रमुख अपने राज्यों की सेना के बड़े सेनापति रहेंगे।

(५) राजप्रमुखों को गर्वनरों से ज्यादा तनख्वाह मिलेगी।

ऊपर लिखे फर्क जनता से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, इसलिये मोटे रूप से कहा जा सकता है कि दूसरी श्रेणी के सूबों में और पहली श्रेणी के सूबों में कोई अन्तर नहीं है। हां, तीसरी श्रेणी का फर्क अलबत्ता थोड़ा सा फर्क डाल देता है।

## भाग आठ, तीसरी श्रेणी के सूबे।

आठवें भाग में वे राज्य बताये गए हैं जो बहुत छोटे हैं और भारत के मर्मस्थानों में फैले हुए हैं। इसलिए ये इलाके अपनी हुकुमत नहीं रखते। इनकी हुकुमत केन्द्र की हुकुमत है।

प्रति जिम्मेवार है और इस मंत्रिमंडल का प्रधान प्राइमिनिस्टर के समान ही है। मंत्रिमंडल के निर्माण में काफी अन्तर है। संसद के दोनों सदन मिल कर मंत्रिमंडल का निर्माण करते हैं। हमारे यहां इस भवन का मंत्रिमंडल के निर्माण में कोई हाथ नहीं है।

एक महत्वपूर्ण अन्तर यह भी है कि रूस में संसद का उम्मेदवार ऐसा व्यक्ति खड़ा नहीं हो सकता जो निजी व्यापार करता है, या अपनी नफाखोरी के लिए दूसरों को नौकर रखता है, या जो मेहनत नहीं करता है या जो सिर्फ मिडिलमैन का काम करता है।

## वालिग मताधिकार

सन् १८३२ के सुधार कानून के पास हो जाने से ६ फी सदी लोगों को मताधिकार मिल गया। सन् १८६७ में दूसरा कानून पास हुआ और मताधिकार की फी सदी बढ़ कर ८ हो गई। १८८४ के तीसरे सुधार कानून से १४ फी सदी लोगों को यह अमूल्य हक मिल गया।

पहले महायुद्ध के अन्त होने पर सन् १९१८ में एक कानून पास हुआ जिससे पुरुषों को बालिग मताधिकार मिल गया। स्त्रियों को इसी वर्ष पहिले पहल मताधिकार मिला परन्तु उनकी उम्र बालिग न रख कर ३० वर्ष पर रख दी गई। इङ्गलैंड में २१ वर्ष का व्यक्ति बालिग माना जाता है।

१९१८ का यह कानून पास होने से लगभग ३२ फी सदी जनता को वोट का हक मिल गया।

सन् १९२८ में एक और कानून पास हुआ और २१ वर्ष के सब स्त्री पुरुषों को वोट मिला और लगभग ६० फी सदी जनता मतदाताओं की सूची में आई। ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि लोकतत्र के इस निवास स्थान इगलैंड में भी थोड़ा थोड़ा करके सदियों में जाकर बालिग मताधिकार मिला।

अमरीका में आज तक केवल साक्षर बालिग को वोट देने का हक है।

भारत के इस सविधान से पहले १९३५ का कानून चालू था। उसके अनुसार केवल १३ फी सदी लोगों को मताधिकार प्राप्त था इसके पहले सन् १९१९ का कानून चलता था जिसके

अनुसार ३ फी सदी को मत काहक हासिल था। इसके पहिले नाम मात्र का कहीं कहीं निर्वाचन का ढोंग था।

नये मताधिकार के अनुसार लगभग १७ करोड़ जनता २१ वर्ष की कूंती जाती है। परन्तु इन सारों में वोट देने के लिये आधे से ज्यादा नहीं जायेंगे। इंगलैंड में भी सन् १६४५ में लगभग ५६ फी सदी वोटरों ने वोट डाले थे। केवल रूस में १००फी सदी निर्वाचक वोट देते हैं।

आशा करें भारत में भी सभी निर्वाचक वोट देंगे।

—समाप्त—